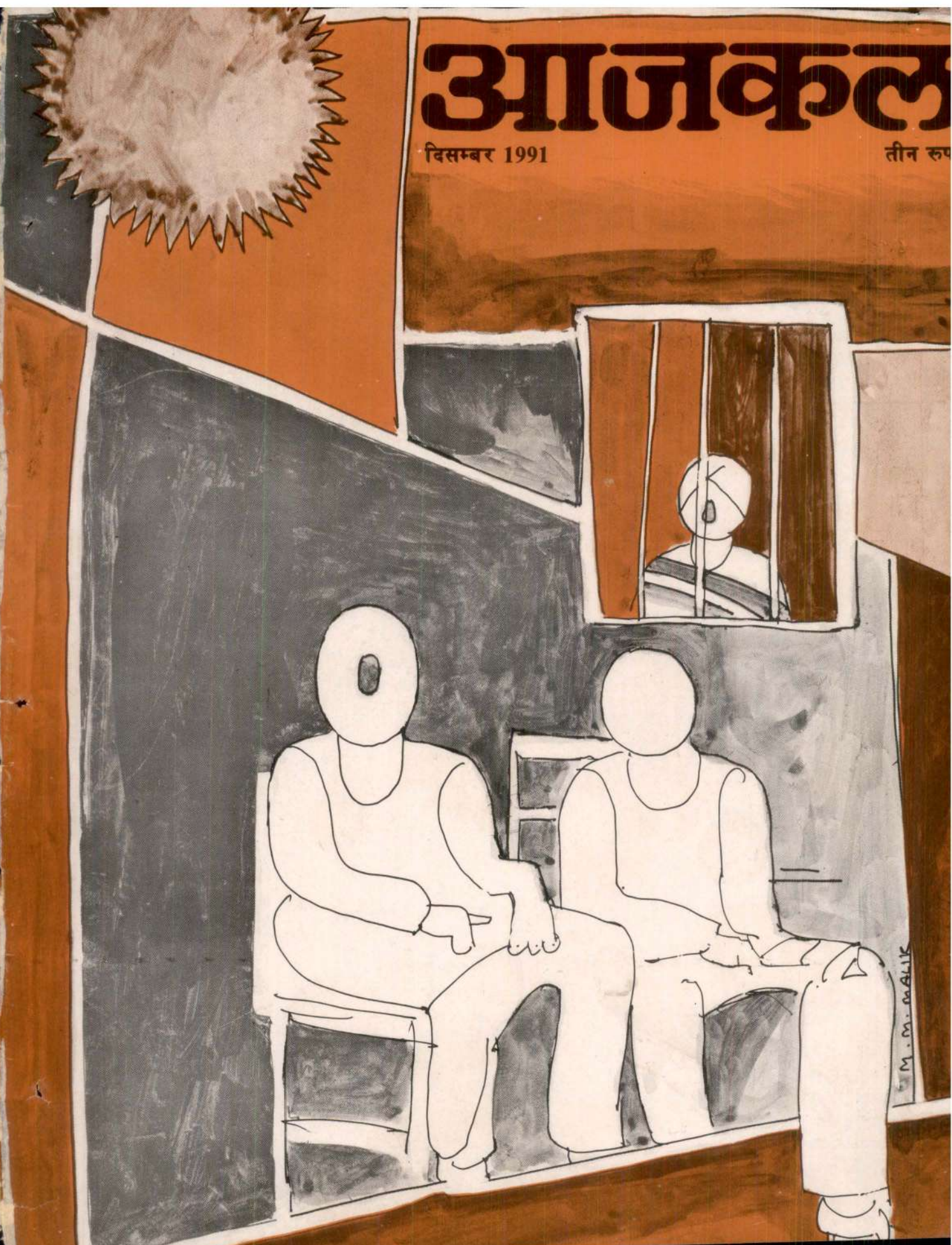
आजकल

दिसम्बर 1991

तीन रुप



चेहरे

सुधेश



दिन भर दिखते चेहरे
तरह-तरह के चेहरे
गोरा गोल गुलाबी चेहरा
सभी सुखों की लाली
मीठी गन्ध लपेटे,
भोला गुमसुम चेहरा
विश्व अजायबघर में
कुछ खोया-खोया,
खिला-खिला, फूला-फूला
गुलाब-सा चेहरा
बुला रहा भ्रमरों को
हंस कर चुभो रहा कांटे
आतुर हृदयों में,
सूखे पीले गेंदे-सा चेहरा
शोषित जन का प्रतीक,
बड़े सड़े दांतों को
कितनी बार दिखाता चेहरा
बात-बात पर हंसता
और हंसाता चेहरा
दुःखों से बेखबर
दुःखों की हंसी उड़ाता चेहरा,
वह कीकर के तने सरीखा
काला सूखा चेहरा
भूखा प्यासा भी हंसता हरी कंटीली हंसी
कटते छंटते भी ऊंचा रहता,
वह प्रश्नों भरा
सताया चपटा चेहरा
सुविधा के उत्तर से निराश
झुंझलाया चेहरा
सौ वसन्त के बावजूद
कुम्हलाया चेहरा,
वह सब से अलग-थलग सपाट चेहरा
न प्रश्नों की खरोंच
न चोट दुःखों की
आत्म पर चर्बी की मोटी पर्त
उसका पेट भरा
सारी दुनिया गिर जाए गर्त,
वह निरीह चेहरा
करुणा की सूरत
आशा नहीं किसी से नहीं अपेक्षा
रोटी की तलाश में व्यस्त
अपने आंसू और पसीना
पीकर मस्त,

तनी भौंहों, अंगार उगलती
आंखों वाला चेहरा
मिलता है कभी-कभी,
अंगारों की चटक धूप में
साफ चमकते शोषण के तिलिस्म
उसकी तनी मुट्ठियां
जीवन सागर में तिरती नौका के मस्तूल
उसकी चीख
युद्ध का डंका
विजय का नारा
आजादी का आश्वासन।

इन चेहरों में
ढूंढ रहा हूं किस को,
मन का मीत?

कहां मिलता है
कितना खोजो,
शायद इन में खोज रहा हूं
अपना चेहरा
जो इन चेहरों में
रूप बदल-बदल कर आता। □

फ्लैट नं. 1317, पूर्वांचल,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067

वर्ष : 47; अंक : 8; पूर्णांक : 568;
दिसम्बर : 1991 (अग्रहायण-पौष, 1913)



आजकल

आधुनिक साहित्य
एवं
संस्कृति का संवाहक मासिक

सम्पादक
सुरेश चन्द्र शर्मा

सहायक सम्पादक
प्रवीण उपाध्याय

उप-सम्पादक
विजय कुमार

विज्ञापन व्यवस्थापक
: **बैजनाथ राजभर**
उत्पादन अधिकारी
: **के. आर. कृष्णन्**
व्यापार व्यवस्थापक
: **जसवंत सिंह**
सहायक व्यापार व्यवस्थापक
: **शकुन्तला**
आवरण सज्जा
: **एम. एम. मलिक**

रचना-क्रम

2. प्रतिक्रियाएं

3. सम्पादकीय : नवगीत की सार्थकता

लेख :

4. नवगीत की सौन्दर्य भूमि — **भारतेन्दु मिश्र**
9. नवगीत आन्दोलन के जुझारू योद्धा — **देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'**
13. समन्वित संस्कृति के विकास में दक्खिनी साहित्य की भूमिका — **डा. शीलम् वेंकटेश्वर राव**
24. कथाकार रमाकान्त — **राजकुमार सैनी**
31. चीनी-भाषा — **कृष्णकिंकर सिंह**
35. रंग और रेखाओं का सार्थवाह — **ललित शुक्ल**
38. सेवेरे की सैर — **नरेन्द्र लूथर**

कहानियां :

17. अन्तर है — **शशिप्रभा शास्त्री**
26. राधा के पांव — **डा. गंगेश गुंजन**

21. **कविताएं :**
डा. हरीश निगम, जहरी कुरेशी, अशोक गुप्त, नरेन्द्र मोहन, अतुल शर्मा, ओ. पी. श्रीवास्तव, अमरजीत सिंह और (आवरण पृष्ठ 2 पर) सुधेश।

इसके अतिरिक्त पुस्तक समीक्षा, वातायन और रंगमंच आदि नियमित स्तंभ।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक 'आजकल' (हिन्दी), प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 387069



आजकल सितम्बर माह का अंक समय पर मिला। कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ टैगोर के सम्पूर्ण जीवन, साहित्यिक चरित्रों का उल्लेख मिला है। संपादकीय लेख–रवीन्द्रनाथ टैगोर पर एक अच्छा लेख है। राष्ट्रभाषा हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ–लेख में डा. वासुदेव जी ने हिन्दी की राजभाषा दृष्टिकोण को बताया है। तथा विदेशों की हिन्दी स्थितियों से अवगत कराया है। विवादास्पद कहानीकार सआदत हसन मंटो की देवन्द्र इस्सर द्वारा संकलित–मंटो नामा, मंटो की श्रेष्ठ कहानियां, मंटो की राजनीतिक कहानियां–आदि का अध्ययन कर जो विश्लेषणात्मक लेख डा. गुरुचरण सिंह जी ने हमें दिया है, यह कार्य एक सदकार्य है। डा. बलदेव वंशी जी के हथेली पर सूखती भांग की पत्तियां लेख में एक साहित्यकार, पत्रकार, कवि का लावारिस की तरह मौत पाना और साथियों द्वारा कार्य का समापन करना, कवि की चरित्र विशेषता आदि का दिग्दर्शन कराता है। यह लेख बहुत ही हृदयस्पर्शी लगा।

अपना कंधा अपनी लाश में लेखक ने आज के महंगाई के दौर में एक लाश को ठिकाने लगाना एक समस्यापूर्ण कार्य बताया है। परिस्थितियां ही समस्या पैदा करती हैं और परिस्थितियां ही समस्या का समाधानपूर्ण मार्ग प्रशस्त करती हैं। एक की मृत्यु समस्या बनती है, आत्मज्ञान देती है, आंतरिक चेतना को जगाती है। दिलीप सिंह जी का यह लेख भी आंतरिक चेतना को जगाता है। और आज के इस आसमान को छूती चीजों के मूल्यों के कारण मनुष्य, परिवार, समाज के वैचारिक, सामाजिक पृष्ठभूमि की तस्वीर बनाते हुए उसके मनोभावों का दिग्दर्शन कराता है।

गंभीर सिंह पालनी, हेमन्त कुकरेती, स्वराज्य शुचि और योगेन्द्र दत्त शर्मा की कविताएं अच्छी लगीं। राजेन्द्र गौतम, मधुर नज्मी और नारायण लाल परमार जी के गीत हृदयस्पर्शी रहे।

देवेन्द्र नारायण दास, साधना कुटीर, बसना, रायपुर (म. प्र.)

'आजकल' का सितम्बर अंक मुझे यथासमय प्राप्त हुआ। अशोक भाटिया जी की लघुकथा 'अच्छा घर' का विषय पुराना था अपितु काफी सशक्त और नए तेवर लिए था।

डा. वासुदेव द्वारा प्रस्तुत लेख 'राष्ट्रभाषा हिन्दी का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ' काफी ज्ञानवर्द्धक एवं रोचक लगा। एक स्थान पर (पृष्ठ संख्या 6 कालम 1) उन्होंने लिखा है–"1975 में कानपुर में सम्पन्न प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन" तथा दूसरे स्थान पर (पृष्ठ संख्या 6 कालम 2) उन्होंने लिखा है–"जनवरी 1955 में नागपुर में सम्पन्न प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन...।" ये वाक्य विरोधाभास उत्पन्न करते हैं। कृपया जानकारी हेतु इसे स्पष्ट करें।

उमेश अग्रवाल, राजा फ्लैट्स, बरियातु (रांची)

प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन जनवरी, 1975 में नागपुर में हुआ था।

–सम्पादक

सितम्बर अंक में लगभग सभी लेख अच्छे लगे। डा. सूरज पालीवाल को मेरी ओर से मुबारकबाद। डा. वासुदेव, गुरुचरण सिंह, बलदेव वंशी, दिलीप सिंह, बरसाने लाल, वीरेन्द्र शर्मा, रवीन्द्र अंधारिया एवं एस. अहमद को बहुत-बहुत बधाई। गुरचरण सिंह ने काफी अच्छी जानकारियां दीं। जी. कमलाधरन की कहानी 'अकेली' शायद लेखक महोदय की आपबीती हो। कविताओं ने तो मन मोह लिया।

परवेज शीतल, छातीबाद, कतरास रोड, धनबाद-828113

आजकल का सितम्बर अंक प्राप्त हुआ। सब मिलजुलकर यह अंक भी पर्याप्त तुष्टिदायी रहा। कवीन्द्र रवीन्द्र के बहुआयामी सर्जक-व्यक्तित्व का आपने जो अपने सम्पादकीय में सम्यक समीचीन समाकलन किया, वह सर्वदृष्टया पठनीय है, प्रशंसनीय है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के विषय में डा. वासुदेव का आलेख काफी जानकारी देने वाला रहा मगर आचार्य दंडी का जो श्लोक उन्होंने प्रारम्भ में ही उद्धृत किया है, वह कुछ गलत छपा लगता है क्योंकि इसकी वर्तमान स्थिति में उस श्लोक से अभीष्ट अर्थ प्राप्त कर लेना मुश्किल लगता है। और फिर उन्होंने अपने आलेख में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन को दो बार दो जगह सम्पन्न कराया है–1975 में कानपुर में और फिर 1955 में नागपुर में। दोनों सम्मेलनों में रूसी भाषाविद् चेन्नीशेव भाग लेते हैं और लगभग एक ही बात एक ही तरह की भाषा में बोलते हैं।

देवेन्द्र इस्सर द्वारा लिखित मंटोनामा से सम्बन्धित डा. गुरचरण सिंह का मंटो पर आलेख मंटो के व्यक्तित्व–कृतित्व का समाकलन बड़ा ही प्रभावोत्पादक, बड़ा ही आश्वस्तिकारक है। और डा. बलदेव वंशी ने जिस ढंग से बल्लभ डोभाल के विषय में अपनी बात कही, वह तो एक सृजनात्मक सुख दे गया, एक रचनात्मक रस। उनका आलेख स्वयं में एक सम्पूर्ण रचना है। डा. वीरेन्द्र शर्मा का मारीशस के हिन्दी समर्पित साधक सोमदत्त बखौरी सम्बन्धी आलेख भी पर्याप्त ज्ञानप्रद व प्रेरणादायक रहा। डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी और दिलीप सिंह की रम्य रचनाएं भी काफी आनन्ददायिनी, रसप्रदायिनी रहीं। डा. सूरज पालीवाल का समकालीन आलोचना सम्बन्धी आलेख अवश्य ही कुछ कमजोर, स्वल्पप्रभावी कहा जाएगा। इस विषय पर कुछ ज्यादा गंभीर व व्यापक विचारण-विश्लेषण-विमंथन होना चाहिए।

काव्य-संभाग पर्याप्त समृद्ध रहा–स्वराज्य 'शुचि', योगेन्द्र दत्त शर्मा के गीत तो खूब ही मनभावन, सुहावन रहे। सुषमा प्रेम और राजेन्द्र गौतम के गीत भी काफी मनहर, मनमोहक रहे और मधुर 'नज्मी' के गीत में तो एक खास तरह की वैभवमयी रसमयता रही, एक खास किस्म की माधुरी–एक खास गंध-स्वाद जो विरल है। कहानियों में 'मोमिन' की 'आत्मकथा' और कमलाधरन की 'अकेली' काफी अच्छी रचनाएं रहीं। तो सब मिलजुलकर यह अंक भी पर्याप्त तुष्टिकर व आस्वादनीय रहा। बधाई।

रवीन्द्रनाथ ओझा, डाकबंगला रोड, बेतिया (बिहार)

सम्पादकीय

नवगीत की सार्थकता

कविता मानव हृदय का सूक्ष्मतम स्पंदन है। स्पंदन का मूल स्रोत संवेदन है जो कि मनुष्य और मनुष्य के बीच हार्दिक संवाद के लिए नितांत आवश्यक है। किन्तु यांत्रिकता के दौर में संवेदन का क्षय होते चले जाना आज के मनुष्य के लिए बड़ा अभिशाप बन गया है। आधुनिकता और विकास ने जहां मनुष्य को प्रगति के उच्च शिखर पर ला बिठाया है वहीं उसके साथ जुड़ी यांत्रिकता ने मनुष्य को उसके संवेदन और स्पंदन से वंचित कर दिया है। आज का मनुष्य आधुनिकता की मृग-मरीचिका में व्याकुल हिरण सा भटक रहा है, किसी कस्तूरी की खोज में। यही कस्तूरी कविता है। यह कविता कस्तूरी मनुष्य की कुंडली में ही है। किन्तु इसकी गंध को मनुष्य पहचान नहीं पाता क्योंकि उसका अपने आप से भी संवाद खंडित हो चुका है। पर यह कविता कस्तूरी अपनी गंध के द्वारा मनुष्य को अपनी ओर बरबस आकर्षित करती ही है। मनुष्य को मनुष्य होने का बोध यह कविता ही देती है।

संस्कृत की एक उक्ति है–"किं कविस्तेन काव्येन/किं कांडेन धनुष्मतः/परस्य हृदये लग्ने न घूर्णयति यच्छिरः।" उस कवि के काव्य से क्या लाभ और उस धनुर्धारी के तीर से क्या लाभ जो दूसरे के हृदय को वेधकर उसके सिर को घुमा नहीं देता! यहां कविता के संदर्भ में सिर को घुमा देने वाली बात का तात्पर्य केवल वाहवाही से नहीं है। सिर को घुमा देने का तात्पर्य चेतना को झकझोर देने से है। चेतना को झकझोरने के संदर्भ में कविता की सामाजिक प्रासंगिकता भी स्वतः स्पष्ट हो जाती है। वैयक्तिक अनुभूति को समग्र अनुभव के साथ जोड़कर कविता ही सामाजिक इकाई के रूप में मनुष्य और मनुष्य के रिश्ते को तय करने की भूमिका निभाती है। समूचे यथार्थ के बीच से सत्य की तलाश कविता ही कराती है; मनुष्य को उसकी उद्दाम आस्था और उत्कट जिजीविषा से कविता ही जोड़ती है; उसकी टूटन और भटकन को भी वह सार्थक बना देती है।

कविता आज कई रूपों में दिखाई देती है : पारंपरिक कविता, नई कविता, पारंपरिक गीत, नवगीत तथा ग़ज़ल आदि। बाहरी तौर पर देखने से ऐसा लगता है जैसे कि कविता के ये स्वरूप अपने आप में स्वतंत्र इकाइयां हैं लेकिन यदि थोड़े गहरे पैठ कर देखा जाए तो इनकी मूल प्रकृति में कोई अंतर दिखाई नहीं देता। कुछ रचनाकारों और कुछ आलोचकों ने कविता की ये जो घेरेबंदियां की हैं वे टूट जानी चाहिएं। यह न सिर्फ हमारे समय का तकाजा है बल्कि कविता मात्र के लिए भी यह हितकर है।

कविता की प्राचीन परंपरा छंदानुसान की रही है। यह छंदानुसान ही कविता को गीत के रूप में प्रस्तुत करता है। गेयता, संगीतात्मकता और लयात्मकता कविता की पहचान के रूप में जानी जाती रही हैं। इस बीच में एक ऐसा अंतराल भी आया जब कविता को छंद और लय से मुक्त करने का प्रयास भी किया गया है। यह कहा गया कि चूंकि जिंदगी की लय टूट गई है इसलिए कविता में से भी लय का लोप हो जाना चाहिए। इसी के साथ-साथ कविता को छंद के बंधन से मुक्त करने की बात भी कही गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि कविता समाज में गीत को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा और छंदमुक्त कविता काव्य क्षितिज पर एकमात्र कविता के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। उधर गीत भी अपनी गलदश्रु भावुकता और रोमानियत के घेरे से बाहर नहीं निकल पाया। फलतः गीत की उपेक्षा होने लगी। उधर मंच पर भी गीत अस्वस्थ होता चला गया और यह लगभग जाना जाने लगा कि छंद, लय और गीत की कोई प्रासंगिकता नहीं रह गई है। और अब वह गुजरे जमाने की चीज बन कर रह गया है। किन्तु कुछ सामर्थ्यवान रचनाकारों ने छंद और लय के प्रति अपनी आस्था नहीं छोड़ी। वे गीत को उसकी लिजलिजी भावुकता और आत्मकेंद्रिकता से मुक्ति दिलाकर उसे आधुनिक संवेदनों से जोड़ने का प्रयास करते रहे। और उनके इन्हीं प्रयासों का यह परिणाम रहा है कि गीत विधा में पुनः प्राण लौटे और आज नवगीत के रूप में वह एक चर्चित विधा बन चुकी है।

आज छंद की वापिसी की चर्चा भी जोरों पर है। लेकिन देखा जाए तो छंद की वापिसी का सवाल तब उठता है जब छंद कहीं चला गया हो। कविता का इतिहास साक्षी है कि छंद कभी कहीं गया ही नहीं था। उसे छंद की पुनर्प्रतिष्ठा कहना शायद अधिक उपयुक्त होगा। और इसे नवगीत की सफलता ही माना जाएगा कि उसने छंद की पुनर्प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज हिन्दी में अनेक रचनाकार ग़ज़ल लिख रहे हैं। नवगीत और ग़ज़ल दोनों को ही गीत विधा के अंतर्गत लाकर देखें तो यह मानना होगा कि आज गीत विधा अपनी लिजलिजी भावुकता, रोमानियत और अंतर्मुखता से मुक्त होकर आधुनिक और वैज्ञानिक संदर्भों से जुड़ चुकी है।

नवगीत को स्थापित और प्रतिष्ठापित करने में डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने उल्लेखनीय कार्य किया था। आज वह हमारे बीच नहीं हैं किन्तु गीत विधा के लिए उनकी देन नए रचनाकारों के लिए सदैव प्रेरणा का काम करेगी। □

नवगीत की सौन्दर्य भूमि

भारतेन्दु मिश्र

मनुष्य सौन्दर्य का अन्वेषक है और जीवन इस सौन्दर्यानुसंधान की यात्रा है। गीत हमारी अनंत यात्रा का स्थायी सहचर है। गति ही गीत है और गति ही जीवन भी अर्थात् जहां तक जीवन है वहां तक गीत की शाश्वत यात्रा चलती रहेगी। प्रकृति में जो अपरिमेय सौन्दर्य है उसके अनेक कारण हैं जिनमें समुद्र का अनवरत गान, पक्षियों के असंख्य कलरव, मेघों के अविस्मरणीय चित्र, हिमगुहाओं से टकराती हुई पवन की सीत्कार, जल प्रपातों का कल्-कल् निनाद, इन्द्रधनुष, अगणित पुष्प और उनकी मादकता आदि उल्लेखनीय हैं। परन्तु ये सभी उपादान तब तक व्यर्थ हैं जब तक हमारी परख और सह-अनुभूति में विकास नहीं होता। आचार्य अभिनव गुप्त ने ध्वन्यालोक की लोचन टीका में सहृदय को परिभाषित किया है–"येषां काव्यानुशीलनभ्यासवशात् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीय तन्मयीभवनयोग्यता, ते स्वहृदय संवादभाजाः सहृदयाः"–अर्थात् सतत् काव्यानुशीलन के अभ्यास से जिनके मन रूपी दर्पण विस्तृत हो गए हैं और जिनमें वर्ण्य विषय में तन्मय होने की योग्यता आ गई है, वे अपने ही हृदय के संवादभाजन सहृदय हैं। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि किसी भी साहित्य समीक्षक के लिए काव्यानुशीलन का अभ्यास, सहृदयता और वर्ण्य विषय में तन्मयता अपरिहार्य है। रचनाकार के साथ की जाने वाली अनुभूति ही सह-अनुभूति है। सहानुभूति के बिना पाठक, श्रोता या समीक्षक किसी को आनन्द नहीं मिलता। जिस रचना में आनन्द विभोर करने की क्षमता नहीं है वह सुन्दर भी नहीं हो सकती।

समय के साथ-साथ हमारे सौन्दर्य मूल्य भी परिवर्तित हुए हैं। सन् 1940 के आस-पास नए-नए सामाजिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना हुई है, जो इस युग के सत्य के रूप में उभरे हैं। इस क्रांतिकारी परिवर्तन के दौर में जब हमारी भाषा भी परिवर्तित हो गई तो सौन्दर्यपरक मूल्य कैसे अछूते रह सकते हैं। सन् 1950 तक भारत में भी यह परिवर्तन होने लगा था। 1941 में जॉन क्रो रैसम के ग्रंथ 'द न्यू क्रिटिसिज्म' का प्रकाशन हुआ। बाद में हिन्दी में नंददुलारे बाजपेयी की 'नया साहित्य नए प्रश्न', डा. नगेन्द्र की 'नई समीक्षा नए संदर्भ' प्रो. के. सी. पाण्डेय की 'स्वतंत्र कलाशास्त्र' जैसी पुस्तकें प्रकाश में आईं। इसी बीच में नई कविता, नई समीक्षा, नई कहानी, नवगीत आदि साहित्यिक क्रांतियां भी उभरने लगी थीं, जिसके फलस्वरूप भाषा, छन्द, अनुभूति, अभिव्यक्ति और रुचियों व सौन्दर्यपरक मूल्यों में भी परिवर्तन आए। गद्य की भाषा में परिवर्तन का बीड़ा तो बाबू भारतेन्दु जी ने शताब्दी के प्रारम्भ में ही 'निज भाषा उन्नति अहं, सब उन्नति को मूल' कह कर उठाया था। कालांतर में कविता की भाषा भी छायावाद तक आते-आते बदलने लगी। रुचि के परिवर्तनों पर यदि हम ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि रुचि वह शक्ति है जो सौन्दर्य के प्रकारों और परिणामों में भेद कर सकती है। प्राचीन काल में व्यक्ति कमल की सुन्दरता पर रीझ जाता था परन्तु आज कमल के बाह्य रूप सौन्दर्य के स्थान पर उसमें निहित मानवीय अभिप्रायों, दृष्टिकोणों, वक्तव्यों, अवसादों एवं वरीयताओं का भी समावेश होता है। कलाकार का दृष्टिकोण वृत्तिमूलक नहीं होता, उसके लिए बबूल का वृक्ष बहुत कुछ हो सकता है। युग पुरुष निराला के नवगीतों में सर्वप्रथम परिवर्तित सौन्दर्य मूल्यों की समझ हमें देखने को मिलती है। दिसम्बर 1952 में निराला ने लिखा था–

"बान कूटता है,
मुगरी लेकर सुख का/राज लूटता है
मूज के फाले-छाले/अच्छे बांधों वाले
ऐसे बैठे ठाले/काज टूटता है।"

(77-आराधना)

उक्त गीत के माध्यम से निराला ने एक सामान्य बान कूटते श्रमजीवी के संघर्षरत जीवन के सरोकारों का सुन्दर चित्रण किया है। इसे ही युगीन सौन्दर्य बोध की मौलिक दृष्टि कहा जा सकता है। साहित्य से अब तक छायावादी प्रेम सौन्दर्य की काल्पनिक गीत रचनाओं का ज्वर उतरने लगा था। इसी बीच माखन लाल चतुर्वेदी, पंत, गिरिजा कुमार माथुर, केदार नाथ अग्रवाल एवं शिव मिंगल सिंह सुमन आदि ने भी नवगीत को नवीन ऊर्जा प्रदान की। 'तार-सप्तक' भी निकल चुके थे, उनमें भी नई कविता के साथ नवगीतों का यत्र-तत्र संकलन किया गया था। दादा माखन लाल चतुर्वेदी के नवगीत का एक अंश देखें–

"समय के समर्थ अश्वमान लो
आज बंधु चार पांव ही चलो
छोड़ दो पहाड़ियां, उजाड़ियां
तुम उठो कि गांव-गांव ही चलो।"

(184-न. अ.)

समय के समर्थ अश्व कह कर कवि ने युग के समर्थ राजनीतिज्ञों को संबोधित किया है, इससे पूर्व गीत में इस प्रकार की नवीन बिम्बात्मकता के दर्शन प्रायः नहीं होते। इस प्रकार हम देखते हैं कि नवगीत की सौन्दर्य भूमि का निर्माण निराला, माखन लाल चतुर्वेदी, राम नरेश पाठक, अज्ञेय, रामविलास शर्मा, डा. धर्मवीर भारती, डा. रामदरश मिश्र, भारत भूषण, वीरेन्द्र मिश्र, बालस्वरूप राही आदि की गीत रचनाओं से हो रहा था। परन्तु–

जब कोई नया प्रयोग प्रारम्भ होता है तो उसकी परख, पहचान में समय तो लगता ही है। जब तक नवगीत को स्वीकृति मिली तब तक उक्त साहित्यकारों में से कुछ तो नई कविता की सपाटबयानी पर रीझ गए, कुछ मंच पर जा बैठे और कुछ चल बसे। इस आसन्न अवसान काल में ही राजेन्द्र प्रसाद सिंह के संपादन में 'गीतांगिनी' नामक प्रथम नवगीत संकलन का 1958 में प्रकाशन हुआ। इस संकलन की भूमिका में ही सर्वप्रथम नवगीत शब्द का व्यवहार किया गया था। डा. शम्भुनाथ सिंह ने गीतांगिनी की समस्त रचनाओं को नवगीत मानने से इनकार कर दिया और राजेन्द्र प्रसाद सिंह की नवगीत परख को भी मौलिक नहीं माना, परन्तु इसके बावजूद नामकरण करने वाले का भी महत्व कम नहीं होता। इस प्रकार तब तक नवगीत अपने अस्तित्व सहित स्थापित हो चुका था। 1958 में ही प्रो. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' द्वारा संपादित 'ताज की छाया में' शीर्षक गीत संकलन का भी प्रकाशन हुआ जिसमें नवगीत की घोषणा भले ही न की गई हो किन्तु उसमें संकलित गीत नवगीत की पृष्ठभूमि को अवश्य रेखांकित करते हैं। 1959 में ठाकुर प्रसाद सिंह की पुस्तक 'वंशी और मादल' आई। इसमें भी नवीन बिम्बों का नवीन लयात्मक प्रयोग किया गया है। 1960 से 1970 के मध्य में नवगीत नवीन संभावनाएं, नवीन चुनौतियां, नवीन विषयवस्तु और नवीन सौन्दर्य बोध लेकर सामने आया। डा. शंभुनाथ सिंह के अथक प्रयासों से नवगीत ने नित नवोन्मेषकारी चित्रों को समेटकर नवीन सौन्दर्य की दिशाएं खोलीं।

क्षण प्रतिक्षण होने वाले नवीन परिवर्तन ही तो सौन्दर्य के प्रतिमान हैं। माघ ने सौन्दर्य की परिभाषा में लिखा है—"क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।" परन्तु प्रत्येक नवीन प्रयोग सुन्दर नहीं होता। तुलसी की एक चौपाई भी नवीन भाव बोध जाग्रत करने पर सुन्दर लगने लगती है और अज्ञेय के कई नवीन प्रयोग नवीन बोध जाग्रत कर सकने में असमर्थ होने के कारण सुन्दर नहीं लगते। रचनाकार की अभिव्यक्ति यदि सार्वजनीन नहीं है तो सर्व साधारण उससे क्यों आकर्षित होने लगेगा। जिस बिन्दु पर रचनाकार की भावभंगिमा और पाठक या श्रोता सहृदय के स्थायीभाव एक-दूसरे में तदाकार हो जाते हैं उसी बिन्दु पर आनन्द की सृष्टि होती है, प्रकारान्तर से उसे ही हम सौन्दर्यबोध कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की सौन्दर्यानुभूति का स्तर भिन्न हो सकता है। महाभारत के दृश्य देखकर कोई सहृदय रो पड़ता है तो दूसरा उसी दृश्य को देखकर मुस्करा देता है। अब फिर मुझे यही कहना है कि जिसमें वर्णन के विषय का बोध है, जो उस वर्ण्य विषय में सहानुभूतिपूर्वक तल्लीन है वही उसके सौन्दर्य को समझ सकता है। सुखद और दुखद होनों अनुभूतियां जब कला के माध्यम से सामने आती हैं तो आनन्ददायक होती हैं। यथा शकुंतला के पतिगृह गमन पर सहृदय सामाजिक नटी के दुख से साक्षात्कार करके रो पड़ता है और अपार आनन्द का अनुभव करता है, अभिनय की प्रशंसा करता है क्योंकि रोने का कारण उसका अपना दुख नहीं होता, यही है वास्तविक सौन्दर्य बोध।

भूखे व्यक्ति के लिए संसार की सर्वाधिक सुन्दर वस्तु भोजन है, प्यासे के लिए सर्वाधिक सुन्दर जल है। ऐसे व्यक्ति के लिए मोनालिसा की प्रतिमा की सुन्दरता या अजन्ता एलोरा की गुफाओं के शिल्प में कोई रुचि नहीं होती, क्योंकि ऐसे सर्वहारा व्यक्ति की चेतना का साधारणीकरण अजन्ता एलोरा या मोनालिसा के चित्रों से नहीं हो पा रहा है। नवगीत ने ऐसे सर्वहारा की ओर ध्यान दिया और उसकी व्यथाकथा को अपना लक्ष्य बनाया। कोई यह भी कह सकता है कि यह कार्य तो नई कविता (ब्लैंकवर्स) ने भी शुरू किया था अतः वह भी सुन्दर है। इस प्रश्न के उत्तर में 'काव्येषु नाटकं रम्यं' की उक्ति को रेखांकित करना चाहूंगा, अर्थात् काव्यों में नाटक सुन्दर है, क्योंकि काव्य एक ललित कला है जबकि नाटक में काव्य, संगीत और अभिनय तीन ललित कलाओं का मिश्रण है, इसलिए नाटक काव्य से अधिक सुन्दर है। इसी प्रकार नई कविता में कथ्य एवं तथ्य है जबकि नवगीत में कथ्य, तथ्य एवं लय भी है। लय या रिदम हमारी सांसों में भी है, सूर्य और चन्द्र में भी है, दिन और रात में भी है अतः उसका निषेध जीवन का ही नहीं कविता की आत्मा का भी निषेध है, इस प्रकार नई कविता की सौन्दर्य दृष्टि कहीं अधिक व्यापक व दूरगामी है, नई कविता और नवगीत में इसके अतिरिक्त कोई और महत्वपूर्ण शास्त्रीय भेद नहीं है। छन्द कविता का शारीरिक रूप है जबकि लय उसका आत्मनिष्ठ गुण। इसका अर्थ यह नहीं कि सभी नवगीत सुन्दर ही होते हैं। सुन्दर तो वे ही नवगीत रचनाएं होती हैं जो हमारी संवेदनाओं को गहरे तक झकझोर जाती हैं और अवर्णनीय आनन्द की स्थिति तक हमें ले जाती हैं, यह किसी भी नवगीत को पढ़कर या सुनकर स्वयं अनुभूत होने वाली स्थिति होती है। किसी के कहने से या किसी के सिद्ध कर देने से सर्वसाधारण उसे स्वीकारने के लिए बाध्य नहीं हो जाता। 1960 के आसपास लिखा गया रवीन्द्र भ्रमर के नवगीत का सौन्दर्य बिम्ब उल्लेखनीय है—

"सीढ़ी से सरक गई धूप/कलशों पर ठहर गई शाम
बंद पड़ी पवन की बुहार/ठमक गई नदी की धार
मछुओं ने दुहर लिए जाल/मछलियो करो अब आराम।"

(67—रवीन्द्र भ्रमर के गीत)

सीढ़ी से धूप का सरकना या कलशों पर शाम का ठहर जाना, इत्यादि जो नवीन मानवीय सरोकारों को जोड़ने वाले बिम्ब हैं, उनका विस्तार नवगीत की सौन्दर्य भूमि को विस्तृत करता है। इनसे भी पूर्व गिरिजा कुमार माथुर ने अपने गीतों में ऐसे प्रयोग प्रारम्भ किए थे।—

"चांद हेमन्ती/हवा बहती कटीली
चांदनी फैली हुई है/ओस नीली।"

(23—छाया मत छूना मन)

गीत में नवीन सौन्दर्यान्वेषण का कार्य इसी युग में डा. धर्मवीर भारती ने भी किया था। आज नवगीत में जो आंचलिक सौन्दर्य के बिम्ब देखने को मिलते हैं उनका प्रारंभ निम्न प्रकार के गीत बिम्बों से ही हुआ था—

"कुछ समीप की/कुछ सुदूर की
कुछ चन्दन की/कुछ कपूर की
कुछ में गेरू/कुछ में रेशम/कुछ में केवल जाल
ये अनजान नदी की नावें/जादू के से पाल।"

(132/ न. अ.)

नवगीत की सौन्दर्यभूमि का निर्माण डा. रामदरश मिश्र के गीतों द्वारा भी हुआ है। नवीन सौन्दर्य बिम्बों की मौलिक उद्‌भावनाएं मिश्र जी के गीतों में यत्र-तत्र देखने को मिलती हैं। यद्यपि आगे चलकर इन्होंने भी डा. भारती और गिरिजा कुमार माथुर आदि की भांति नई कविता की ओर प्रस्थान किया, फिर भी उनके नवगीत की सौन्दर्यसृष्टि की दिशा में किए गए योगदान को नकारा नहीं जा सकता–

"शैवालों पर मरी मछलियां
रख कर चली गई जल परियां
उतर रहे हैं गिद्ध गगन से
रच रेती पर चित्र पवन से
चले गए वे दिन उन्मन से।"

(–मेरे प्रियगीत)

हमारी पुरानी पीढ़ी का एक सशक्त नाम बाबा नागार्जुन का है। वे भी प्रारम्भ में छन्दबद्ध रचनाएं लिखते थे कालांतर में नई कविता की ओर मुड़ गए परन्तु नवगीत को उन्होंने भी सौन्दर्य की नवीन भूमि दी है–

"बहुत दिनों बाद
अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान।"

(145-न. अ.)

इसके साथ ही उस समय के चर्चित सुन्दर गीत सर्जकों में बाल स्वरूप राही का नाम भी अग्रणी रहा है। यद्यपि वे गजलों की दिशा में प्रस्थान कर गए किन्तु नवगीत की सौन्दर्य भूमि उनकी भी ऋणी है–

"जब भी मैं सुनता हूं/छन्दहीन नगरों के, मंचों से लोक गीत
मुझको यह लगता है/किसी रेल के नीचे
हिरनों का एक झुण्ड आ गया
रक्त हरा पट्टी पर छा गया।"

(–जो नितांत मेरी हैं)

इससे पूर्व जो छायावादी वासन्ती बह रही थी उसमें नवगीत की उष्मा और तीखी यथार्थ सौन्दर्य दृष्टि का सम्मिश्रण होने लगा था। उक्त उद्धरणों में 'अनजान नदी की नावें, जादू के से पाल', 'रच रेती पर चित्रण पवन से, चले गए वे दिन उन्मन से', 'धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान' और 'किसी रेल के नीचे, हिरनों का एक झुण्ड आ गया, रक्त हरा पट्टी पर छा गया', जैसे बिम्ब मानवीय जीवन की यथार्थता के अत्यंत सन्निकट हैं, इसीलिए ये गीत-बिम्ब सुन्दर भी हैं। यथार्थ का सौन्दर्य स्थायी होता है, कल्पनाओं की सुन्दरता क्षणिक होती है। धीरे-धीरे यह सौन्दर्यान्वेषी दृष्टि विकसित होती गई और नवगीत की विकास यात्रा शुरू हुई। आठवें दशक में नवगीत की जगह-जगह गोष्ठियां प्रारम्भ हो चुकी थीं–बनारस में डा. शम्भुनाथ सिंह, बम्बई में वीरेन्द्र मिश्र, दिल्ली में प्रो. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', रमेश रंजक, इलाहाबाद में उमाकांत मालवीय, पटना में सत्य नारायण, म. प्र. में नईम आदि ने स्थान-स्थान पर नवगीत की चर्चा व नवगीतात्मक प्रयोग शुरू कर दिए थे। अब नवगीत के भीतर का सौन्दर्य अर्थात नवीन भाषा, नवीन प्रयोग, नवीन बिंब, नवीन शैली ने लगभग नवगीत की सौन्दर्य भूमि को रेखांकित कर दिया था। 1968 में चन्द्र देव सिंह के संपादन में 'पांच जोड़ बांसुरी' भी ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित की जा चुकी थी। इस संकलन की भूमिका में चन्द्र देव सिंह जी ने भी नवगीत को मौलिक बिम्बों से अनुप्राणित नवीन प्रयोगधर्मी गीत कहा है। यही नवगीत के सौन्दर्य की मूल उद्‌भावना भी है।

स्वातंत्र्योत्तर लेखन में जो आंचलिकता का स्वर कहानियों के माध्यम से उभर रहा था वह लोक संवेदना के रूप में आठवें दशक के नवगीत में आ चुका था। वह नवगीत की सौन्दर्य भूमि का एक महत्वपूर्ण नवीन अध्याय था। दूसरी ओर मार्क्सवाद, प्रगतिवाद और जनवाद के आन्दोलन थे जिनका मूल भी पाश्चात्य धारणाओं पर केन्द्रित था। इन आन्दोलनों ने भी नई कविता के साथ-साथ नवगीत को प्रभावित किया, इस प्रकार नवगीत को तथाकथित आभिजात्य सौन्दर्य प्रतिमानों को छोड़कर सर्वहारा और उपेक्षित वर्ग की ओर देखने का अवसर मिला। इस प्रकार विरूपता के सौन्दर्य की सृष्टि की जाने लगी। मनुष्य के भीतर के मनुष्य को नवगीत के नवसौन्दर्यान्वेषी दृष्टिकोण से नवगीतकारों ने पहचाना।

इसी बीच डा. शम्भुनाथ सिंह द्वारा संपादित-नवगीत दशक-1, नवगीत दशक-2, नवगीत दशक-3 और प्रो. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' द्वारा सम्पादित 'यात्रा में साथ-साथ' का प्रकाशन हुआ। अंततः डा. शम्भुनाथ सिंह ने 1986 में एक समवेत संकलन-नवगीत अर्द्धशती शीर्षक से निकाला। इन सभी संकलनों के आ जाने के बाद राष्ट्रीय स्तर पर नवगीत की सौन्दर्य प्रतिष्ठा हो गई। आज नवगीत में प्रायः तीन प्रकार के बिम्ब देखने को मिलते हैं–आंचलिक, महानगरीय और ऐतिहासिक या सांस्कृतिक बिम्ब। आंचलिकता या महानगर बोध दोनों ही अपने परिवेश परिचायक हैं किन्तु सांस्कृतिक बिम्ब गहन अध्ययन व काव्यानुशीलन से ही रचे जा सकते हैं। नवगीतकारों ने जिस नवीन सौन्दर्य बोध को जाग्रत किया है और जो मौलिक बिम्ब प्रस्तुत किए हैं, उनमें से कुछ प्रमुख नवगीत बिम्बों व नवगीतकारों का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। 'अविराम चल मधुवंती,' वीरेन्द्र मिश्र जी के सौन्दर्यपरक नवगीतों का संकलन है। इसके साथ ही नवगीत की दिशा में कोमल किन्तु कमनीय सौन्दर्य बिम्बों की भी संरचना प्रारम्भ हुई–

"डसने के बाद सर्प खिसका है
चूसे विष कौन दाय किसका है
जल तरंग में गरल/मधुवंती
तू ही अविराम चल/मधुवंती।"

(104/ अविराम चल मधुवंती)

आपाधापी की भगदड़ में स्थान-स्थान पर डसने के लिए सर्प मिल जाते हैं परन्तु उनसे मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। ऐसी विपरीत स्थितियों मे भी मनुष्य अविराम माधुर्य की खोज में लगा

हुआ है। डा. शम्भुनाथ सिंह ने नवगीत में आंचलिकता को ही सर्वाधिक रेखांकित किया है, उसे ही महत्वपूर्ण सिद्ध किया है और अधिकतर ऐसे ही प्रयोग भी किए हैं:

"खिड़की से गूंगे उत्तर
देहरी से चीखते सवाल
मुझको क्या-क्या नहीं मिला
मन ने सब कुछ रखा सम्भाल।" (157/न. द. 1)

गूंगे उत्तर या चीखते सवाल जैसे वाक्यांशों से जो बिम्ब उभरता है वह एक थके हारे व्यक्ति की संवेदना की सुन्दर अभिव्यक्ति है। ठाकुर प्रसाद सिंह के नवगीतों को आकार की दृष्टि से लघुगीत ही कहा जाना चाहिए। कुछ लोग तो उनके गीतों को संथाली लोक-धुनों का हिन्दी अनुवाद भी कहते हैं। परन्तु उन्होंने नवगीत की दिशा में जो सुन्दर प्रयोग किए हैं वे भी उल्लेख्य हैं:

"वंशी स्वर उमड़-घुमड़ रो रहा
मन उठ चलने को हो रहा
धीरज की गांठ खुली लो लेकिन
आधे अंचरा पर पिय सो रहा।"

(129/ न. द. 1)

धीरज की गांठ और आधे अंचरा पर पिय सो रहा वाक्य नवगीत की आंचलिक सौन्दर्य की ऊंचाइयों को रेखांकित करते हैं। बाद में ठाकुर जी भी नई कविता की ओर मुखातिब हो गए। नवगीत के सौन्दर्य निरूपकों में स्व. उमाकांत मालवीय का नाम अग्रगण्य है। 'एक चावल नेह रींधा' उनके सांस्कृतिक बिम्बों से अनुप्राणित गीतों का संकलन है जो नवगीत की सौन्दर्य चर्चा के नवीन क्षितिज का परिचायक है। अंशुमालिनी के नवगीत अंक में प्रकाशित उनके गीत का सौन्दर्य देखें:

"ठिगने कद वाले दिन/लम्बी परछाइयां
धूप की इकाई पर/तिमिर की दहाइयां
रातें पत्तल हुईं/दिन दोने हो गए।"

(जु. सि.-1988, अंशु)

नवगीत में मालवीय के सौन्दर्य बिम्ब अपना अलग ही बोध लिए होते हैं। उक्त उदाहरण में ही 'धूप की इकाई, तिमिर की दहाइयां' और 'रातें पत्तल, दिन दोने' इस प्रकार के प्रयोग उनकी सुन्दरतम अभिव्यक्ति का नमूना हैं। नवगीत में सांस्कृतिक बिम्बों की महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ने वाले प्रो. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का नाम उनके प्रसिद्ध संकलन 'दिन पाटलिपुत्र हुए' से अधिक चर्चित हुआ है, उन्होंने अनेक मौलिक बिम्बों को नवीन सौन्दर्यान्वेषी दृष्टि से गढ़ा है:

"चुभ गया/बबूलों को/आम का बड़ा होना
झूठ पर चढ़ी कलई सच की थी उतर गई
एक गिलहरी छोटी, पर्वत को कुतर गई
कांच से/ढका हीरा/पीतल निकला सोना।"

(74/ आंखों में रेत प्यास)

'चुभ गया बबूलों को, झूठ पर चढ़ी कलई, सच की थी' या 'गिलहरी पर्वत को कुतर गई' आदि वाक्यों के प्रयोग से सौन्दर्य की जो सृष्टि होती है वह मौलिक ही है। रमेश रंजक को चाहे किसी भी कारण से नवगीत दशक योजना में शामिल न किया गया हो परन्तु उनके गीतों की सौन्दर्य दिशा ही अलग है। रमेश रंजक के गीतों का चरित्र जनवादी है, उन्होंने सर्वहारा का बहुत सुन्दर चित्रण किया है:

"रहट जब चकरोड में आ जाए
और सूखी रोटियां खा जाए।
मिट्टी बोलती है।"

(13/मिट्टी बोलती है)

'रहट का चकरोड में आ जाना' और 'मिट्टी का बोलना' दोनों वाक्यांश सर्वहारा गरीब किसान की व्यथा को चित्रित करते हैं। यही रमेश रंजक की सौन्दर्य दृष्टि है। ओ३म प्रभाकर का नाम भी नवगीत से जुड़ा रहा परन्तु नई कविता की चमक दमक से प्रभावित होकर उन्होंने गीत की दिशा को त्याग दिया। परन्तु उन्होंने नवगीत का जो साहचर्य निभाया है वह अवश्य ही उल्लेखनीय है:

"किरन बनाती तुझे सुहागिन
आंखें खोल अरी बैरागिन
इत-उत अहरह/अहरह इत उत
लट ले तेरी मदिर हवा के ठुमके।"

(71, –न. अ.)

इसी क्रम में आंचलिक सौन्दर्य का स्वर देने वाले नईम का उल्लेख भी परमावश्यक है। नईम के गीत अपने अनूठे सौन्दर्य बिम्ब के कारण अलग से ही पहचाने जाते हैं:

"नीले जल झीलों के/बतखों सी तैर रही/
पुरवइया क्वार की
सपनों के मंदिर गढ़/खेतों मड़ैया चढ़
रखवाली करती हैं/मकई औ' ज्वार की।"

(19/ न. द. 1)

उक्त शब्द बिम्ब को देखकर मन सहसा ही मकई और ज्वार के खेतों में बने हुए मचानों पर जा बैठता है। डा. उमाशंकर तिवारी का नाम भी नवगीत के सौन्दर्य बोध से जुड़ा हुआ है। उनका भी एक प्रयोग निम्नवत है:

"घरों से/उठती भभक सी
छतों से उठता धुआं है
इस समय को क्या हुआ है?"

(66/ न. अ.)

नवगीत की मनोरम गीतात्मक सुन्दरता और उक्ति वैचित्र्य के कारण डा. माहेश्वर तिवारी का गीत-फलक सौंदर्यान्वेषी सशक्त नवगीतकार के रूप में उनकी छवि को उभारता है। 'हरसिंगार कोई तो हो' इस दशक के श्रेष्ठ नवगीत संकलनों में से एक है। उनके गीत ही उनका परिचय देते हैं:

"कैद हुए हैं जब से/बुने हुए घेरे में
गर्म गर्म सांसों के/शब्द हैं अंधेरे में

बहुत-बहुत-बहुत दिन हुए
कन्धों को सौंपते जुए।"

(कवर पेज-बेला-फरवरी-मार्च-88)

'कंधों को सौंपते जुए' वाक्यांश में मध्यवर्गीय व्यक्ति की शाश्वत संवेदना का जितना सुन्दर निरूपण हुआ है उसका कोई सानी नहीं है। किशन सरोज को सूक्ष्म सौन्दर्य बिम्बों के रचयिता के रूप में जाना जाता है, उनका एक सूक्ष्म सांस्कृतिक बिम्ब देखें:

"बांचते हम रह गए अन्तर्कथा
स्वर्णकेशा गीत वधुओं की व्यथा
ले गया चुनकर कमल कोई हठी युवराज
देर तक शैवाल-सा हिलता रहा मन।

(चन्दन वन डूब गया)

'स्वर्ण-केशा गीत वधुओं' एवं 'शैवाल-सा हिलता रहा मन' इन बिम्बों की अनूठी सौन्दर्य योजना है। आंचलिक और पारिवारिक सौन्दर्य बिम्बों को मनोहारी प्रस्तुति देने वाले सत्यनारायण का नाम भी नवगीत में नवीन बिम्बों की सृष्टि करने वाला सिद्ध हुआ है। उनकी नंदतिक गीत सृष्टि से ही–'टूटते जल बिम्ब' शीर्षक नवगीत का श्रेष्ठ संकलन सामने आया है। एक अंश उल्लेख्य है:

"सूर्य का हर रोज/नंगे पांव चलना
घाटियों में हवा का/कपड़े बदलना
ओस/कुहरा, घाम/सब सहता हुआ दिन।"

(268/ न. अ.)

'सूर्य का नंगे पांव चलना' या 'हवा का कपड़े बदलना' ये बिम्ब हमारी दैनंदिन जीवन की सौन्दर्यानुभूति के बदलते परिवेष के ही परिचायक हैं। प्राकृतिक बिम्बों के माध्यम से डा. इसाक अश्व ने जीवन की सुन्दरता को अंकित किया है:

"फिर असाढ़ की बूंद बंधु/सावन की झड़ी हुई
कजरारे-सुरमई खेत/वन बांसों से हरियाए
नदी पेड़ पनघट पगडंडी/सबके सब सरसाए
बिजुरी की स्वर्णाभ चमक/जुगनू की लड़ी हुई।"

(62 सूने पड़े सिवान)

उक्त सुन्दर चित्र को देखकर डा. इसाक अश्क की सुन्दर चित्रात्मक शैली का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। अनूप अशेप लोक संवेदना और आंचलिक सौन्दर्य बिम्बों के श्रेष्ठ नवगीतकार हैं। एक उद्धरण निम्नवत है:

"महुए की कूच/गुलमोहर के/फूल
आंख भरी पगडंडी/गमछे में/धूल
झउए की गंध मेरा गांव
मन का अनुबंध मेरा गांव।" (43/न.द. 2)

गुलाब सिंह के गीतों में भी आंचलिक जातीय सौन्दर्य मुखरित होता है यथा–

"दिन भर थकी/सांझ को लौटी
बूढ़ा बाप/धरे सगुनौटी
धूप सरीखी धिया हमारी
चौखट तार गई।" (95/न.द. 2)

डा. कुंवर बेचैन का नाम चर्चित नवगीतकारों में से एक है। उनके गीतों में महानगरीय जीवन के अनूठे बिम्ब देखने को मिलते हैं। बाद में आप भी बालस्वरूप राही की भांति गजलों की ओर मुड़ गए परन्तु नवगीत की सौन्दर्य चर्चा में उनके गीतों का भी बड़ा महत्व है :

"जिन्दगी है पिनकुशन जैसी
दोस्ती का अर्थ चुभना हो गया है
और चुभने के लिए हैं/पिन बहुत सारे।" (76/न.अ.)

जिन्दगी पिनकुशन है जिसमें बहुत सारे दोस्त चुभे हुए हैं, यह महानगरीय बोध आज के मध्यमवर्गीय व्यक्ति के मन की सुन्दरतम अभिव्यक्ति है। इसी क्रम में जहीर कुरेशी का भी सौन्दर्य बिम्ब उल्लेखनीय है यद्यपि वे भी नवगीत की दिशा से गजलों की दिशा में आ गए हैं :

"मीलों लंबा सफर/योजनों लंबा जीवन है
लेकिन, उसके साथ/भ्रमित पंथी जैसा मन है
गलत पते के खत से/भटक रहे हैं इधर/उधर।"

(95/न.अ.)

नवगीत के सैद्धांतिक पक्ष को उजागर करने वाले डा. राजेन्द्र गौतम का नाम नवगीत के स्तम्भ के रूप में अविस्मरणीय है। उन्होंने भी कुछ सुन्दर प्रयोग नवगीत में जोड़े हैं :

"रात उतरती सीवानों में
गांव ऊंघते मैदानों में
दूर अंधेरे में सन-सन-सन
आल्हा गाते बांसों के दिन।" (20/गीत पर्व आया है)

कुमार रवीन्द्र ने आंचलिक सौन्दर्य बोध का सुन्दर निरुपण किया है। 'आहत हैं वन' नामक नवगीत संकलन में उनके मौलिक आंचलिक बोध या लोक जीवन के सौन्दर्य के चित्र भरे पड़े हैं :

"कैसे हम/सूरज को/इस जगह पुकारें
डूबती हवाएं हैं/घिरती दीवारें
गुम्बज हो रहे बड़े, आसमान छोटे।' (55/आहत हैं वन)

नवगीत में मौलिक सौन्दर्य बिम्बों की सृष्टि करने वाले बुद्धिनाथ मिश्र का नाम भी उल्लेखनीय है। 'जाल फेंक रे मछेरे' उनके सौन्दर्यधर्मी गीत बिम्बों की कृति है। यथा :

"पोंछती है शाम आंचल से/सुबह का गम
एक धुंधला आईना है/आज का मौसम।"

(33/जाल फेंक रे मछेरे)

शाम के द्वारा आंचल से सुबह का गम पोंछा जाना या धुंधला-आईना वाक्यांश से थके हारे महानगरीय व्यक्ति के मन की संवेदना मनोरम ढंग से व्यक्त हई है। योगेन्द्र दत्त शर्मा जीवन की विरुपताओं को मौलिक शब्द बिम्बों से गढ़ने वाले श्रेष्ठ रचनाकार हैं। उनकी अपनी सौन्दर्य दृष्टि है :

"टूटे रथ, अश्व थके/छूट गई वल्गाएं
धुंध के सिवानों को/लौट गई पगडंडी

(शेष पृष्ठ 37 पर)

नवगीत आंदोलन के जुझारू योद्धा

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'

संयोग से पिछले दो दशकों में अन्य विधाओं की अपेक्षा, किसी-न-किसी रूप में कविता ही साहित्य चिन्तन के केन्द्र में रही है, चिन्तन का मुद्दा चाहे पारम्परिक काव्य रहा हो, चाहे नई कविता, लम्बी कविता या नवगीत या गजल। यह एक दूसरा संयोग है कि इस कालावधि में एक के बाद एक दर्जनों नवगीतकारों के पचास से ऊपर संकलनों का प्रकाशन हुआ और जिन पर विविध पत्र-पत्रिकाओं, गोष्ठियों और सम्मेलनों में गम्भीर परिचर्चाएं भी होती रहीं। और इसे भी हम एक दुःखद संयोग कहेंगे कि जब साहित्य के इतिहास में नवगीत स्वयं को रेखांकित करने जा रहा था तभी सर्वश्री उमाकान्त मालवीय, भगवान स्वरूप 'सरस', रमेश 'रंजक' और डाक्टर शंभुनाथ सिंह जैसे चर्चित और सम्मानित नवगीतकार हमारे बीच में नहीं रहे। इनमें भी विशेष रूप से शंभुनाथ सिंह जी के आकस्मिक अवसान से नवगीत को जो क्षति उठानी पड़ी है, उसकी भरपाई शायद वर्षों तक न हो पाए।

उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद के अंतर्गत रावतपार नामक ग्राम में ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी संवत 1973 (1916 ईस्वी) को डा. शंभुनाथ सिंह का जन्म हुआ था। हिन्दी में एम. ए. करने के पश्चात उन्होंने पी-एच. डी. और डी. लिट. की उच्चतम उपाधियों के लिए गंभीर अनुसंधान भी किया। सन् 1948 से 1959 तक वे काशी विद्यापीठ में हिन्दी के व्याख्याता रहे तत्पश्चात वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर आसीन हुए। 11 वर्ष तक यहां कार्यरत रहने के पश्चात 6 वर्ष तक काशी विद्यापीठ में हिन्दी विभाग में रीडर पद पर रहे। अंत में सन् 1976 से 1980 तक उन्होंने काशी विद्यापीठ के अंतर्गत तुलसी संस्थान के निदेशक पद को भी सुशोभित किया।

डा. साहब अनवरत साहित्य-साधक थे। उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति द्वारा उनके ग्रंथों को चार बार पुरस्कृत किया गया। सन् 1968 में श्रीमती महादेवी वर्मा की अध्यक्षता में, वाराणसी में उनका स्वर्ण जयंती समारोह भी आयोजित किया गया था। और इस अवसर पर उनके सम्मान में एक अभिनंदन ग्रंथ भी प्रकाशित किया गया था। पिछले दिनों उनकी विपुल साहित्य साधना के सम्मान में उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार से बीस हजार रुपये का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इस जून में दिल्ली में उनकी हीरक जयंती मनाने का आयोजन भी होना था किन्तु उनकी अस्वस्थतावश वह सम्पन्न नहीं हो पाया।

मेरा उनसे प्रथम साक्षात्कार सन् 1954 में लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित दीक्षांत समारोह के समय एक वृहद् कवि सम्मेलन में हुआ था। 'नवगीत दशकों' एवं 'नवगीत अर्द्धशती' के माध्यम से दोनों के सम्बंधों में पर्याप्त निकटता आई थी। यह लेखक का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि जो आलेख डाक्टर साहब के जीवनकाल में लिखा जाना था, वह अब एक श्रद्धांजलि के रूप में लिखा जा रहा है।

डा. शंभुनाथ सिंह का आधी शताब्दी में फैला हुआ साहित्य बहुआयामी है। कवि होने के साथ ही साथ वे एक सफल प्राध्यापक, शोधनिर्देशक और पुरातत्वप्रेमी भी थे। आगे चलकर नवगीत के संदर्भ में एक कुशल सम्पादक और संयोजक की भूमिका का निर्वाह भी उन्होंने किया। अतः उन्होंने पारंपरिक कविता, मुक्तछंदी कविता, छंदमुक्त कविता, गजल और चतुष्पदी तथा नवगीत लेखन के अतिरिक्त कहानी, एकांकी, नाटक, निबंध और शोधग्रंथों का भी प्रणयन किया। डाक्टर साहब के इस अनेक आयामी साहित्य में उनका काव्य-साहित्य ही विशेष रूप से रेखांकनीय रहा है। अतः प्रस्तुत आलेख में हम भी अपनी दृष्टि को उनके कविरूप पर केंद्रित करके आगे बढ़ेंगे। 'नवगीत दशक एक' में उन्होंने जो संक्षिप्त-परिचय रेखा प्रस्तुत की है उसके अनुसार निम्नलिखित कविता संग्रह प्रकाश में आए थे:–'रूपरश्मि' (1941), 'छायालोक' (1945), 'उदयाचल' (1946), 'मनवंतर' (1948), 'दिवालोक' (1951), 'माध्यम में' (1959), 'खंडित सेतु' और 'समय की शिला पर' (1968), 'जहां दर्द नीला है' (1977)। इन मौलिक कविता संग्रहों के अतिरिक्त 'नवगीत दशक–एक' (1982), 'नवगीत दशक–दो' (1983), 'नवगीत दशक–तीन' (1984), और 'नवगीत अर्द्धशती' (1986) का सम्पादन भी किया था।

वर्तमान शताब्दी के चौथे दशक में हिन्दी गीतकाव्य की धारा का विकास अलग-अलग दो दिशाओं में हुआ। पहली धारा के अंतर्गत जो गीत लिखे जा रहे थे वे मुख्यतः कवियों की नितांत व्यक्तिपरक एवं निजी अनुभूतियों से प्रेरित थे। बच्चन जी के 'मधुबाला', 'मधुकलश', 'आकुल अंतर' और 'निशा नियंत्रण' के गीतों ने इस धारा का प्रवर्त्तन किया था। आगे चलकर भगवती चरण वर्मा के 'मधुकण' और 'प्रेमसंगीत', नरेन्द्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत', 'पलाशवन' और अंचल के 'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' जैसे संकलनों द्वारा वैयक्तिक प्रणयानुभूति और क्षयिष्णु रूमानियत की अभिव्यक्ति को और भी अधिक प्रश्रय मिला। कवि शंभुनाथ सिंह के प्रारंभिक गीतों पर इस धारा का प्रभाव पर्याप्त दूर तक देखा जा सकता है। 'रूपरश्मि' और 'छायालोक' जैसे शीर्षकों से ही यह बात सिद्ध हो जाती है। आगे चलकर जब 'समय की शिला पर' का प्रकाशन हुआ तब उसकी

भूमिका लिखते हुए स्वयं उन्होंने यह स्वीकार किया कि "सन् 1940 से 1950 के बीच किशोरावस्था पार करके युवावस्था में चरण रखने के समय मेरे भीतर मांसल सौन्दर्य और प्रेम की जो अनुभूतियां उपलब्ध हुईं मैंने उनको अधिकतर गीत विधा के माध्यम से व्यक्त किया। उनमें जिन निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है वे तटस्थ मन की अनुभूतियां भले ही न हों पर प्रामाणिक अवश्य हैं। ईमानदारी से व्यक्त की गई ये अनुभूतियां वैयक्तिक होती हुई भी सम्भवतः सार्वजनीन थीं।" फलतः उनके इन दोनों संकलनों के गीतों में से अधिकतर संयोग-वियोगपरक श्रृंगारानुभूति पर ही आधृत है। रूपासक्ति और तज्जनित विरह विह्वल छटपटाहट इन गीतों का प्रतिपाद्य विषय रही है।

प्रसंगवश यहां कुछ उदाहरण देना असमीचीन नहीं होगा:

"समय की शिला पर मधुर चित्र किसने
किसी ने बनाए, किसी ने मिटाए
भटकती हुई राह में वंचना की
रुकी श्रान्त हो जब लहर चेतना की
तिमिर आवरण ज्योति का वर बना तब
कि टूटी तभी श्रृंखला साधना की
नयन प्राण के रूप के स्वप्न कितने
निशा ने जगाए, उषा ने सुलाए।"

—'छायालोक'

अथवा:

"हाल बीच सन्नाटे में ज्यों गूंज उठे आवाज
झपकी की दुनिया में जैसे झमक उठीं तुम आज।"

—'दिवालोक'

यह सच है कि उपर्युक्त उद्धरणों में न तो कहीं छायावादी वायवीयता है और न ही किसी प्रकार की रहस्यवादी आध्यात्मिकता। किन्तु इनमें व्यक्तिवादी स्वच्छन्दता की वे सभी विशेषताएं विद्यमान हैं जो उस समय नरेन्द्र और 'अंचल' जैसे कवियों के गीतों में भी लक्षित होती थीं। हां, इतना अवश्य है कि कवि परम्परागत कथ्य को कुछ ऐसे विशिष्ट बिम्बों और वक्रतापूर्ण वचनों के माध्यम से कहता है कि उसमें पुरानेपन की गन्ध न आने पाए। जिन दिनों 'मनवंतर' और 'उदयाचल' आदि संग्रहों में छपने वाले गीतों की कवि रचना कर रहा था उन दिनों हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद की धूम थी। कार्ल मार्क्स और लेनिन द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी इतिहास दृष्टि से कोई भी कवि अछूता नहीं था। शंभुनाथ सिंह ने भी अपनी रचनाओं पर पड़े इस मार्क्सवादी प्रभाव को मुक्त हृदय से स्वीकार किया है। यही वह दूसरी धारा थी जिसमें नितान्त निजी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने वाले रचनाकार भी, वक्त के मुलाहिजे के मुताबिक, कुछ-न-कुछ लिखने के लिए मजबूर थे। स्थाई तौर पर एक प्रतिक्रियावादी कवि या लेखक होने की तुलना में अंशकालिक प्रगतिवादी कवि या लेखक कहलाना अधिक श्रेयस्कर समझा जाता था। प्रसंगवश यहां डाक्टर साहब की कुछ पंक्तियां देना अनुचित न होगा: उद्धृत पंक्तियों से इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि शंभुनाथ जी का प्रगतिशील समाजवादी कवि व्यापक जनकल्याण में तो आस्था रखता है किन्तु ऐसा करने के लिए वह, "लाल रूस का दुश्मन साथी! दुश्मन है इंसान का" भी नहीं लिखता—

"तोड़ो कारा तोड़ो
टूटे लो जग बन्धन
जाग्रत अब जड़-चेतन
तुम भी जग-बन्धन की
ममता माया छोड़ो
करता जग नव-सर्जन
भूला पीड़ा-क्रन्दन
तुम भी जन-जीवन की
उल्टी धारा मोड़ो।"

—'उदयाचल'

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि की श्रमजीवी वर्ग के प्रति सहानुभूति और समाज में परिव्याप्त रूढ़ियों को भंजित करने की अदम्य आकांक्षा के प्रति कोई सन्देह नहीं किया जा सकता तथापि ऐसा यहां प्रतीत होता है कि कवि के अवचेतन पर 'निरालाजी' की रचनाओं का कथ्य और शिल्प अपना प्रभाव सघनता से डाले हुए है। कवि बार-बार यह प्रयास करता है कि वह तत्कालीन प्रभावों से अपनी कृतियों को बचाए रखे और अंशतः उसे इस प्रयास में सफलता भी मिलती है। चाहे वह व्यष्टिपरक रूपचेतना के तृप्ति-अतृप्ति व्यंजक श्रृंगार गीत लिख रहा हो चाहे प्रगतिवादी ढर्रे के क्रान्तिधर्मा जीवन्त और ज्वलन्त प्रेरणाप्रद उद्गारों को व्यक्त कर रहा हो, उसके अपने व्यक्तित्व की मौलिक छाप 'रूप-रश्मि' से लेकर 'उदयाचल' तक के सभी गीतों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

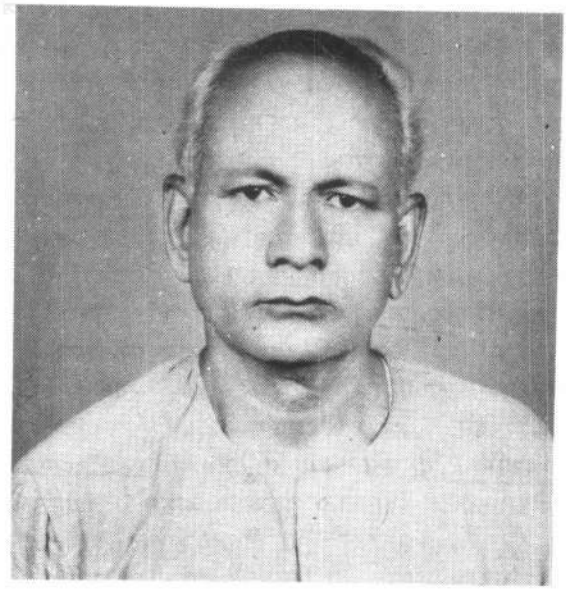
डाक्टर साहब अपने यशस्वी जीवनकाल में एक लम्बे समय तक कवि सम्मेलनों के मंच से भी जुड़े रहे। अपने आकर्षक और व्यवहार कुशल व्यक्तित्व, उत्कृष्ट गीत सर्जना और प्रभावपूर्ण पाठशैली के माध्यम से वे कवि सम्मेलनों के मंचों पर सदैव आदर और सम्मान के साथ सुने जाते थे। उन्होंने अपने जीवन काल में ही कवि सम्मेलनों को चरम उत्कर्ष तक जाते हुए भी देखा था और कालान्तर में कवि सम्मेलनों के घोर पतनशील स्तर को लेकर उन्हें वितृष्णा भी होने लगी थी।

प्रयाग से डा. जगदीश गुप्त के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'नई कविता' शीर्षक पत्रिका में डा. शंभुनाथ सिंह के अनेक गीत प्रारंभ में प्रकाशित भी हुए थे किन्तु छन्द और लय विवर्जित नई कविता तथा छन्द-लय समन्वित गीत की यह जुगलबन्दी बहुत अधिक समय तक नहीं चल सकी। गीत की जड़ें जहां भारतीय काव्य, संगीत, संस्कृति-दर्शन और आंचलिक परिवेश की वास्तविकताओं की जमीन में गहरे तक फैली हुई थीं, यहां प्रयोगवाद अथवा नई कविता का प्रसार और विस्तार भारतीय सर्जना के सदाबहार गझिन गाछ पर अमरबेल के रूप में हुआ। इस धारा के कवियों और मनीषियों को परम्परित मार्ग पर चलने की अपेक्षा अंधेरे में नई राहों का अन्वेषण करना अधिक प्रीतिकर लगा। नई राहों पर भटकने से बचने के लिए इनके पास जो 'लाइटर्स' थे वे टी. एस. इलियट, एजरा पाउण्ड, ईडिथ सिटवेल,

आडेन और स्पेण्डर की दूकानों से उधार लिए हुए थे। इन आधुनिकतावादी बुद्धिजीवियों को अस्तित्ववाद, दादावाद, घनवाद आदि वैचारिक आभ्नायों ने जितना प्रभावित किया उतने ही ये भारतीय मनीषा और जीवनमूल्यों के प्रति निषेधवादी थे। युद्धोत्तर यूरोप और अमरीकी समाज की भांति इन कवियों को भारतीय जीवनशैली लयहीन प्रतीत होने लगी। परिणामतः काव्य के सन्दर्भ में लय की चर्चा करने को ये पिछड़ापन समझते थे। बहुत हुआ तो इनकी विशेष सहानुभूति 'अर्थ की लय' पर आते-आते ही चूक जाती थी। ऐसी दशा में छन्द और लय का पक्षधर गीत इस प्रयोगवाद अथवा नई कविता के शिविर में कितने दिन तक स्वयं को सम्मानपूर्वक टिकाए रखता? परिणाम यह हुआ कि 'नई कविता' पत्रिका और 'परिमल' जैसी नवलेखन की पक्षधर संस्था से डा. शंभुनाथ सिंह का मोह भंग हुआ। जिसे वे अब तक जुड़वां भाई समझते थे उसी से उन्हें सम्बन्ध-विच्छेद होना पड़ा। किन्तु डाक्टर साहब का नई कविता से सम्बन्ध-मुक्त होना स्वयं उनके लिए जितना शुभ सिद्ध हुआ उतना ही नवगीत के स्वतंत्र विकास के लिए भी। कहना न होगा कि तब तक नए गीत का जन्म तो हो चुका था किन्तु उसका औपचारिक नामकरण होना शेष था।

इसमें भी कोई दो अभिमत नहीं कि नवगीत के प्रचार, प्रसार, सम्प्रेषण और समायोजन की दिशा में जितनी तत्परता और निष्ठा डा. शंभुनाथ सिंह ने दिखाई, उतनी अन्य कोई नवगीतकार नहीं दिखा सका। ऐसा होने के भी अनेक सार्थक कारण हैं। सर्वप्रथम तो वे नवगीतकारों की बिरादरी में सबसे अधिक वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और प्रभावी पद पर आसीन व्यक्ति थे जिनके नेतृत्व को अधिकांश लोगों ने सहज और सहर्ष भाव से स्वीकार किया। दूसरे उनमें जितनी नेतृत्वक्षमता और संयोजन-पटुता थी उतनी ही अनवरत सर्जनात्मक क्षमता भी थी। गुणात्मकता और परिमात्रा के धरातल पर उन्होंने जो लिखा है वह निर्विवाद रूप से स्तरीय और स्पृहणीय है। तीसरा कारण था उनका नवगीत का एक समर्थ अधिवक्ता होना। चौथा कारण उनके नेतृत्व का रहा उनका बहुसमन्वयकारी दृष्टिकोण। जिस समय पत्राचार और व्यक्तिगत यात्राओं के माध्यम से शंभुनाथ जी नवगीत के प्रतिभाशाली रचनाकारों को शहर-दर-शहर जा-जाकर तलाश करते हुए उन्हें एकता के सूत्र में पिरो रहे थे उस समय अन्य वरिष्ठ और प्रतिभाशाली गीतकार आत्मस्थ भाव से या तो सर्जनारत रहे या कवि सम्मेलनों से बा-वस्ता बने रहे। ऐसे ही और भी अनेक कारण हैं जिनके आधार पर वे ही नवगीत के वरिष्ठ शलाका पुरुष ठहरते हैं।

स्वाभाविक है कि जब शंभुनाथ सिंह पारम्परिक गीत, कवि-सम्मेलनीय गीत और नई कविता के साथ देर तक और दूर तक अपना तादात्म्य स्थापित नहीं कर सके तो उन्होंने नवगीत की जमीन पर कुछ नए प्रयोग करना ही अधिक सामयिक, अधिक प्रयोजनीय और अधिक श्रेयस्कर समझा। 'माध्यम में' प्रकाशन के साथ-साथ उनके नवगीतकार का व्यक्तित्व प्रकाश में आया : 'टेर रही, प्रिया तुम कहां', 'पुरवैया धीरे बहो, मन का आकाश उड़ा जा रहा है', 'बजता है ढोल कहीं पूजा के बोल', 'छिप-छिप कर चलती पगडण्डी घन खेतों की छांव में' और 'पिया न आए,



शम्भुनाथ सिंह,

आमों में आ गया टिकोरा री' जैसे एक-से-एक सुन्दर, सरस, मार्मिक, भाषा-छन्द और बिम्ब के स्तर पर सर्वथा अछूते और ताजे गीतों की अनवरत रचना के द्वारा शंभुनाथ जी स्वयं को जहां परम्परागत गीत रूढ़ियों से मुक्त कर रहे थे वहां उन्होंने अपने अन्य समकालीन और परवर्ती नवगीतकारों के लिए दिशा-निर्देशक की महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई, किन्तु 'माध्यम में' के गीतों को हम पूरे तौर पर नवगीत नहीं कह सकते। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस संग्रह के गीत छन्द विधान, लयात्मकता और भाषा की ताजगी के स्तर पर अन्य गीतकारों की रचनाओं से कुछ विशिष्ट थे। सन् 1954 के आसपास 'मैला आंचल' के प्रकाशन के द्वारा हिन्दी उपन्यास साहित्य में जिस प्रकार आंचलिकता की लहर आई उसी प्रकार शंभुनाथ जी के इन गीतों के और आगे चलकर 'वंशी और मादल' के संथाली धुनों पर लिखे गीतों ने नए गीत को अधिक आंचलिक और लोकोन्मुख बनाया। किन्तु क्या नई गीतों को पूरी तरह आधुनिक संवेदना से लैस नई अभिव्यक्ति और अभिनव बिम्बधर्मिता से युक्त नवगीत कहा जा सकता है? कम-से-कम हमें यह स्वीकार करने में आपत्ति है। जिसे पूरा पक्का नवगीतकार कहा जा सकता हो, शंभुनाथ जी का वह व्यक्तित्व तो 'जहां दर्द नीला है', 'वक्त की मीनार पर' और उनके अंतिम संकलन 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' में ही परिलक्षित हुआ है। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि शंभुनाथ जी के नवगीतकार रूप का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। यदि वे कुछ और समय तक रहे होते तो नवगीत को और भी नए आयाम दे पाते।

जिस प्रकार डा. शंभुनाथ सिंह के नवगीतों में उनके निरंतर विकासशील रूप को देखा जा सकता है, उसी प्रकार हिन्दी के समग्र नवगीतपरक साहित्य ने भी अपने विकास के चरमशिखर तक पहुंचने की दिशा में अनेकानेक आयामों और दिशाओं में अविराम यात्रा की है। मोटे तौर से देखने पर सन् 1970 से 1990 तक के समय को हम नवगीत का स्वर्णयुग कह सकते हैं क्योंकि इसी कालावधि में जहां प्रारंभिक नवगीतकारों की रचनाओं में

एतद्देशीय प्रौढ़ि और प्रकर्ष के दर्शन हुए वहां अनेक परवर्ती नवगीतकार भी इसी अन्तराल में प्रतिष्ठित हुए। जिस प्रकार प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की रचनाओं और काव्यगत अवधारणाओं में परस्पर भेद होते हुए भी उन सभी को छायावादी कहा जाता है उसी प्रकार अनेक प्रश्नों पर सहमति न होने पर भी ये सभी नवगीतकार नवगीत के व्यापक सौन्दर्यबोध को विश्लेषित करते रहे। स्वयं डा. शंभुनाथ सिंह और कुछ अन्य नए-पुराने नवगीतकारों ने मिलकर 15-16 सितम्बर 1986 को वाराणसी में नवगीत को परिभाषित और लक्षित करते हुए एक घोषणा पत्र तैयार किया था। इसके अनुसार 'छान्दसिकता और लयात्मकता जो गेयता से समन्वित हो', 'संवेदनधर्मिता या संस्पर्शशक्ति', 'ग्राह्यता और स्मरणीयता', 'सम्प्रेषणीयता', 'बिम्बधर्मिता या चित्रात्मकता, अनलंकृति और सादगी', 'खुलापन अर्थात् स्वायत्तता या अप्रतिबद्धता', 'लोकसम्पृक्ति और जन के प्रति संसक्ति', 'भारतीयता की चेतना और जातीय बोध', 'यथार्थ प्रसंग', 'विसंगतियों के दर्द और सामाजिक पीड़ा की अभिव्यक्ति', 'जीवन के केन्द्र में मानव की प्रतिष्ठा', 'भारतीय ढंग का आधुनिकताबोध', 'ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना', 'परंपरा के भीतर से जख्मी नवता', 'सौन्दर्य, प्रेम और मानवीय भावस्थितियों की जीवनी शक्ति के रूप में स्वीकृति', 'जीवन्तता और गत्यात्मकता' तथा 'आम आदमी की कविता' शीर्षक 17 लक्षणों को नवगीत रचना के लिए प्रयोजनीय माना गया था। स्पष्ट ही इनमें से अधिकांश ऐसे लक्षण हैं जो नवगीतेतर रचनाओं में भी लक्षित किए जा सकते हैं और जिनसे किसी को आधारभूत मतान्तर भी नहीं होना चाहिए।

'वक्त की मीनार पर' शीर्षक संकलन के अधिकतर गीत उपर्युक्त सभी शर्तों को पूरा करते हैं। 'जहां दर्द नीला है' के गीतों में कवि की चेतना मुख्यतः नगरबोध और महानगरबोध पर केन्द्रित थी जबकि इस संकलन तक आते-आते उसने अपने संवेदना-फलक को और भी व्यापक बनाया है, जैसे–

"देश हैं हम
महज राजधानी नहीं
हम बदलते हुए भी
न बदले कभी
लड़खड़ाए कभी
और संभले कभी
हम हजारों बरस से
जिसे जी रहे
जिन्दगी वह नई
या पुरानी नहीं।"

इस संकलन तक आते-आते डाक्टर साहब के गीतों का स्वर आशा, आस्था और विश्वास के रंगों में स्वयं को पूरी तरह रंग लेता है। पिछले नवगीत संग्रह में वे जितने समसामयिकता के पक्षधर थे उतने ही इसमें परंपरा के स्वस्थ और जीवन्त रूप के समर्थक हो जाते हैं। 'जहां दर्द नीला है' के गीतों में नई कवितात्मक-संवेदना, अस्तित्ववादी जीवन दृष्टि, मूल्य विघटन, भय-संत्रास और भीड़ में अकेलेपन की प्रवृत्ति मुखर हुई थी। किन्तु 'वक्त की मीनार' तक पहुंचते-पहुंचते वे मानने लगे कि नवता का जन्म पुरातन की कोख से ही होता है। जिन्दगी बदलते हुए भी कभी पूरे तौर पर नहीं बदल पाती फिर भी हमें पुराने की अपेक्षा नए के स्वीकार के लिए उदार होना चाहिए:

"मैं तुम्हारे साथ हूं
हर मोड़ पर संग-संग मुड़ा हूं
रेत में सूखी नदी की
मैं अजन्ताएं बनाता हूं
द्वार पर बैठी गुफा के
मैं तथागत गीत गाता हूं
बोध के ये क्षण, मुझे लगता
कि मैं खुद से बड़ा हूं।"

'वक्त की मीनार पर' के सिलसिले में ही डाक्टर साहब के अब तक छपे संकलनों में अन्तिम का प्रकाशन हाल में ही हुआ है। इस संकलन के कुछ गीत 'नवगीत के प्रतिमान तथा आयाम' नामक एक समीक्षा-पुस्तक में निकल चुके थे, कुछ का प्रकाशन पिछले दिनों अनेक छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाओं में हुआ तो कुछेक अप्रकाशित भी हो सकते हैं। 'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' शीर्षक इस संकलन के नाम से ही यह जाहिर होता है कि धीरे-धीरे डा. शंभुनाथ सिंह का नवगीतपरक सोच भारतीय संस्कृति की ओर उन्मुख होने लगा था।

डा. शंभुनाथ सिंह स्वभावतः नवीनताकामी होते हुए भी संस्कारतः परम्पराप्रेमी हैं जिसका प्रमाण उनकी समग्र गीत-यात्रा के दौरान रचे गए नवगीतों से मिल जाता है। □

10/61, सैक्टर III, राजेन्द्र नगर,
साहिबाबाद, गाजियाबाद-201005 (उत्तर प्रदेश)

बहके हवा के पांव

डॉ. हरीश निगम

फूल फिर खिलने लगे कचनार के।
आ गए मन की छतों पर मोर
छंद में बदला हवा का शोर,
हाथ पीले काजलों की धार के।
धूप ने खोले सुनहले पंख
लिख रहे ख़त सीपियों को शंख,
बांसुरी में गीत आए प्यार के।
गुनगुनाते चुप्पियों के गांव
रात फिर बहके हवा के पांव,
और पहरे बढ़ गए घर-द्वार के। □

प्रेम बिहार कालोनी, प्रेमनगर
सतना-485001

हैदराबाद नगर की स्थापना की चार सौवीं वर्षगांठ पर विशेष

समन्वित संस्कृति के विकास में दक्खिनी साहित्य की भूमिका

डा. शीलम् वेंकटेश्वर राव

सन् 1991 का वर्ष, हैदराबाद नगर की स्थापना के चतुर्थ शताब्दी समारोह के रूप में मनाया जा रहा है। हैदराबाद नगर का निर्माण कुतुबशाही वंश के अत्यन्त लोकप्रिय पंचम बादशाह मुहम्मद कुलीकुतुब शाह ने आज से चार सौ वर्ष पहले सन् 1591 में कलात्मक ढंग से करवाया था। कुतुबशाही शासकों ने हिन्दू-मुस्लिम या भारतीय-ईरानी, एक नवीन मिली-जुली संस्कृति की नींव दक्खिन-प्रदेश में डाली थी।

यह उल्लेखनीय है कि समन्वित संस्कृति के जीवनतत्व, भारत की मिट्टी और जलवायु में ही विद्यमान हैं। भारतीय संस्कृति में समन्वयन एवं नए उपकरणों को पचाकर आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता है। यह विशेषता आरम्भिक काल से ही उसमें विद्यमान है। इस सम्बन्ध में महाकवि दिनकर का स्पष्ट अभिमत है—"भारत की संस्कृति, आरम्भ से ही सामाजिक रही है। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, देश में जहां भी हिन्दू बसते हैं, उनकी संस्कृति एक है एवं भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय विशेषता हमारी इसी सामासिक संस्कृति की विशेषता है। तब हिन्दू और मुसलमान जो देखने में अब भी दो लगते हैं, किन्तु उनके बीच भी सांस्कृतिक एकता विद्यमान है।"

सूफ़ी साधकों की भूमिका

साधु-सन्तों, ऋषियों, महात्माओं, धर्माचार्यों ने समय-समय पर भारत की इसी सामासिक संस्कृति का संदेश देश के कोने-कोने तक पहुंचाया था। बाद में इसी परम्परा को सूफ़ी-साधुओं ने सुदृढ़ किया और उसे आगे बढ़ाया। लगभग 7वीं शती में सूफ़ी-सन्त भारत में आए। इनकी चार प्रमुख शाखाएं भारत के विभिन्न स्थानों में स्थापित हुईं। सिन्ध प्रदेश में सुहरावर्दी शाखा के सूफ़ी आए। चिश्चिता शाखा के प्रवर्त्तक ख्वाज़ा अबू अब्दुल्ला चिश्ची शाहबुद्दीन गौरी के साथ आकर अजमेर में बस गए। शेख अब्दुल कादरी ने बगदाद में कादरियां शाखा को स्थापित किया, जिसका प्रभाव कश्मीर तक प्रसारित हुआ। दक्खिनी में सूफ़ी विचारधारा को प्रसारित करने वालों में अब्दुल कादर जिलानी के अनुयायी थे। इस प्रकार साधुओं, सन्तों, पीरों और फकीरों की टोलियों ने भारतीय भाषाओं को एक-दूसरे के समीप लाने में जहां सेतु का काम किया, वहीं गंगा-जमुनी संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

दक्खिनी के सूफ़ी साहित्यकारों को मुख्यतः दो कालों में विभाजित किया जा सकता है—बहमनी काल और कुतुबशाही काल। बहमनी काल के प्रमुख सूफ़ी साहित्यकारों में ख्वाजा बन्दे नवाज गेसूदराज, मुहम्मद अब्दुल्ला हुसैनी, निजामी, मीरांजीशमसुलशेख, शाहअली मोहम्मद गाँवधनी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ख्वाजा बन्दे नवाज गेसूदराज, दिल्ली के ख्वाज़ा नसीरूद्दीन चिराग के शिष्य थे। ख्वाजा बन्दे नवाज दिल्ली से लौटकर दक्खिन के गुलबर्गा के सुल्तान फिरोजशाह बहमनी के आश्रित रहे। अपने चमत्कारी कार्यों के कारण बन्दे नवाज हिन्दू और मुस्लिम जनता में बहुत लोकप्रिय हुए। इनकी अनेक



चारमीनार

प्रारम्भिक रचनाएं फ़ारसी में हैं, किन्तु दक्खिन की जनता के लिए आपने 'मेराजुल आशकीन', 'हिदायत नामा', 'रिसाला बारह मासा' आदि रचनाएं दक्खिनी भाषा में लिखीं। 'मेराजुल आशकीन' दक्खिनी भाषा की सर्वप्रथम गद्यकृति मानी जाती है।

कुतुबशाही काल के साहित्यकारों में बुरहानुद्दीन जानम, मुहम्मद कुलीकुतुब शाह गवासी, वजही, मुल्ला वजही आदि प्रमुख हैं।

सर्वधर्म समभाव

सन्तों और सूफ़ियों का दक्खिनी साहित्य वास्तव में धर्मनिरपेक्षता एवं सर्वधर्म समभाव का प्रतीक है। इस साहित्य द्वारा मानवता और ईश्वरीय भक्ति का संदेश दिया गया है। विशेषकर सूफ़ी साहित्य में सूफ़ी सिद्धान्त के अनुसार लौकिक प्रेम के आधार पर अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। एक ओर सूफ़ी साधकों पर भारतीय दर्शन एवं आध्यात्मिकता का प्रभाव दिखाई देता है, तो दूसरी ओर सूफ़ी मत का भारतीय विचारधारा पर सत्रहवीं शती के सन्त शाह तुराब पर विशेषकर सन्त कबीर एवं समर्थ रामदास का प्रभाव परिलक्षित होता है। भ्रमणशील सन्त शाह तुराब ने मद्रास, तंजोर ओर कर्नाटक के बहुत से स्थानों की यात्रा की थी। उन्होंने अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया था। शाह तुराब ने अपनी पुस्तक–'मन समझावन' की रचना करने की प्रेरणा समर्थ रामदास के 'श्रीमनाचेश्लोक' से प्राप्त की थी। पुस्तक का नामकरण भी इसीलिए उन्होंने 'श्रीमनाचेश्लोक' के आधार पर ही 'मन समझावन' रखा क्योंकि इनमें भी मन को समझाने के लिए बातें कही गई हैं। इन दोनों पुस्तकों में समान रूप से एक ही सिद्धान्त की पुष्टि की गई है। इनमें सांसारिक जीवन की अस्थिरता, खोखलापन, नश्वरता का वर्णन किया है और जीवन के उच्चादर्शों को अपनाने और चरित्र की उच्चता को प्राप्त करने की सीख दी गई है।

निस्संदेह सामासिक संस्कृति का दक्खिन के साहित्यकारों पर गहरा प्रभाव पड़ा था। 'राम' और 'रहीम' का अन्तर मिटकर शाह तुराब के यहां केवल 'राम' शब्द रह गया है:

"सिफ़त कर अवल उसकी जो राम हैगा
उसी राम सूं हम कूं आराम हैगा
सदा राम के नाम सूं काम हैगा
हमन ध्यान उसका सुबहो-शाम हैगा।।"

यहां यह उल्लेखनीय है कि धार्मिक चिन्तन के स्तर पर 'राम' और 'रहीम' को इस प्रकार मिश्रित करने का साहस कदाचित ही किसी अन्य सूफ़ी कवि ने किया हो। कबीर के चिन्तन में राम और रहीम एक ही तत्व के दो नाम थे, परन्तु सूफ़ी-परम्परा में दोनों के अन्तर को मिटाकर केवल एक के नाम से स्मरण करना सूफ़ी चिन्तनधारा में एक पग मात्र नहीं, वरन् एक क्रांतिकारी छलांग थी।

शाह तुराब ने अपने काव्य की भाषा को 'हिन्दी' कहा है। वैसे प्रायः दक्खिन के कवियों ने अपनी भाषा को हिन्दी के नाम से अभिहित किया है।



सुल्तान मोहम्मद कुतुबशाह का मकबरा

सूफ़ी साहित्य का प्रभाव

दूसरी तरफ सूफ़ी साधकों ने भारतीय साहित्य और जनमानस को बहुत गहराई तक प्रभावित किया। दक्खिन के सूफ़ी साधकों के द्वारा विरचित दक्खिनी साहित्य सूफ़ी दर्शन से ओतप्रोत है। सूफ़ी सिद्धान्त के अनुसार लौकिक प्रेम के आधार पर अलौकिक प्रेम की व्याख्या की गई है। सूफ़ी साधक भारत में उस समय आए, जब यहां भक्ति भावना की धारा प्रवाहित थी। उस समय यहां की भक्ति में विभिन्न विचार तत्व कार्यरत थे। कबीर जैसे साधक कवियों ने विभिन्न धार्मिक तत्वों का समन्वय करके 'एकेश्वरवाद' के महत्व को प्रतिपादित किया था। दक्खिनी के सूफ़ी साहित्यकारों ने इसी समय सूफ़ी विचार तत्वों को प्रधानता देते हुए विपुल साहित्य की रचना की।

बुराहनुद्दीन जानम, ख्वाजा बन्देनवाज गेसूदराज, मीरांजी आदि दक्खिनी के साहित्यकारों ने लौकिक जीवन के आधार पर पारलौकिक साधना के महत्व को प्रतिपादित किया। दक्खिनी का साहित्य भक्ति-साधना का विपुल भण्डार है। भाषा शैली की दृष्टि से भी दक्खिनी साहित्य की अपनी विशिष्टता है। हिन्दी साहित्य में गद्य के विकास में दक्खिनी साहित्यकारों का बहुत बड़ा योगदान है। इनका गद्य-साहित्य 15वीं शताब्दी में परिपक्व अवस्था में आ चुका था।

दक्खिनी : उर्दू और हिन्दी का आदि स्रोत

सबसे पहले दक्खिनी भाषा के स्वरूप पर विचार करना समीचीन होगा। दक्खिनी के सम्बन्ध में दक्खिनी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा. परमानन्द पांचाल का अभिमत है:

"अमीर खुसरो (सन् 1253-1325 ई. तक) दिल्ली के आस-पास की जिस खड़ी बोली का प्रयोग काव्य की भाषा के रूप में कर रहे थे, कहना न होगा कि कालान्तर में वही भाषा दक्खिनी हिन्दी के रूप में दक्षिण के राज्यों में विकसित होकर आज परिनिष्ठित रूप में देश की राजभाषा के पद पर आसीन है।"

दक्खिनी के अन्य-अधिकारी विद्वान डा. श्रीराम शर्मा दक्खिनी भाषा को हिन्दी तथा उर्दू का आदि स्रोत मानते हैं—"ईसा की अठारहवीं शती में दक्खिनी साहित्य की प्रेरणा और उसके दृष्टान्त से दिल्ली की खड़ी बोली वाला उर्दू साहित्य और बाद में खड़ी बोली वाले हिन्दी साहित्य का शिलान्यास हुआ। इसलिए हम दक्खिनी साहित्य को उर्दू तथा हिन्दी के खड़ी बोली से सम्बन्धित साहित्य का आदि रूप कह सकते हैं। यह साहित्य-धारा वर्तमान हिन्दी और उर्दू साहित्य का आदि स्रोत है।" कुछ विद्वान पंजाबी से उर्दू का विकास मानते हैं।

दूसरा प्रश्न यह है कि दक्खिन प्रदेश से तात्पर्य समस्त दक्षिण भारत नहीं, अपितु सीमित प्रदेश को दक्खिन कहा जाता है। दक्खिन शब्द से वर्तमान बरार, हैदराबाद नगर, महाराष्ट्र और मैसूर राज्य का बोध होता है। इस प्रदेश की गोदावरी और कृष्णा दो प्रमुख नदियां हैं। दक्खिन, उत्तर तथा दक्षिण, आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का मिलन क्षेत्र रहा है। इस सम्मिलन या समिश्रण के कारण दक्खिन ने ऐसी संस्कृति के विकास में आरम्भ से योग दिया है, जिसमें दोनों की विशेषताएं विद्यमान रही हैं। इस संस्कृति की बड़ी विशेषता यह रही है कि वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व न रखकर उत्तर और दक्षिण की ओर समान रूप से फैली है। उसके इस फैलाव के कारण हमारे चिन्तन तथा जीवन में साम्य स्थापित हुआ है।

दक्षिण प्रदेश संस्कृतियों और विचारों का ही संगम स्थल नहीं है, अपितु यहां अनेक जातियों और भाषाओं का मिलन भी हुआ है। तमिल और मलयालम को छोड़कर दक्षिण भारत की तेलुगु, कन्नड़ और मराठी का सम्मिलन इस क्षेत्र में हुआ। आगे चलकर हिन्दी और उर्दू ने भी इसी संगम के स्रोतों में वृद्धि की है।

कुतुबशाही वंश के शासक

कुतुबशाही राजवंश ने गोलकोण्डा में सोलहवीं शती के आरम्भ से सत्रहवीं शती के अन्त तक लगभग दो सौ वर्षों तक आठ शासकों ने राज्य किया। इन शासकों का इतिहास अत्यन्त वैभवपूर्ण था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह काल सुसम्पन्न था। इस वंश के मूल पुरुष सुल्तान कुली कुतुबशाह ने सन् 1512 ई. में कुतुबशाही वंश का राज्य स्थापित किया। पहले सुल्तान कुली तेलंगाना राज्य का एक सैन्य अधिकारी, फिर शासक और अन्त में स्वतंत्र राजा के रूप में लगभग साठ वर्षों तक अपनी 90 वर्ष की वृद्धावस्था तक शासन किया। अबुल हसन कुतुबशाह इस वंश का अन्तिम शासक था, जो दक्खिन की जनता में 'तानाशाह' के नाम से प्रसिद्ध था। तानाशाह ने सन् 1672 से 1687 तक



गोलकुंडा किला

शासन किया। कुतुबशाही राजाओं की महानता युद्धों की विजयों के अलावा कला-विज्ञान और गंगा-जमुनी संस्कृति के विकास में उनके योगदान के कारण बढ़ गई थी। उन्होंने अरबी और फ़ारसी भाषाओं के साथ-साथ, स्थानीय तेलुगु भाषा-साहित्य का पोषण किया। तेलुगु और फारसी भाषाओं के साहित्यिक ग्रंथों का प्रकाशन कराया। कला, संस्कृति और विशेषकर दक्खिनी भाषा एवं उसके साहित्य की अद्‌भुत उन्नति हुई है। कुतुबशाही शासन-काल में दक्खिनी सम्पर्क भाषा बनी।

कुतुबशाही वंश का चौथा बादशाह इब्राहीम कुली कुतुबशाह, जो गोलकोण्डा किले का वास्तविक निर्माता था, उसने सन् 1550 से 1580 ई. तक तीस वर्ष शासन किया। उसके शासन की उपलब्धियों में सरोवरों और नगरों का निर्माण, बाग-बगीचों की सुव्यवस्था, राजभाषा तेलुगु का विकास और तेलुगु के कवि-पंडितों का सम्मान। इस सम्बन्ध में आचार्य भीमसेन निर्मल लिखते हैं—''गोलकोण्डा के कुतुबशाही राजाओं को स्मरण करना चाहिए, जिन्होंने तेलुगु काव्य रचना को यथेष्ट प्रोत्साहन दिया। इन राजाओं के आश्रय में कवियों ने शुद्धान्ध (ठेठ तेलुगु) के काव्यों की रचना की है। पोन्नकंटि तेलंगन्न का 'ययाति चरित्र' प्रथम और श्रेष्ठ शुद्धान्ध काव्य है।''

यह उल्लेखनीय है कि कुलीकुतुबशाह वंश के शासकों में पांचवां शासक मुहम्मद कुली कुतुबशाह अत्यन्त लोकप्रिय था। मिली-जुली संस्कृति का पोषक, कला एवं साहित्य का प्रेमी था। हैदराबाद नगर का निर्माण उसने आज से चार सौ साल पहले सन् 1591 में कराया था। नगर के बीचों-बीच चारमीनार नाम की एक इमारत बनवाई, जो आज भी अपनी सुन्दरता तथा भव्यता के कारण प्रसिद्ध है। वह स्वयं दक्खिनी तथा तेलुगु का कवि और महान विद्वान था। उसने अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की और अपने काव्य ग्रन्थों में हिन्दू त्यौहारों एवं रीति-रिवाजों का विशद् वर्णन किया था। वह स्वयं हिन्दू जनता के साथ अपने दरबार में उनके त्यौहारों को श्रद्धा के साथ मनाया करता था। दूसरी ओर उसके शासन काल में मुहर्रम के विशाल जुलूस में मुसलमानों से हिन्दुओं की संख्या अधिक रहा करती थी। आज भी कमोबेश वही परम्परा कायम है। अक्कन्ना और मादन्ना उसके दरबार के हिन्दू मंत्री थे। एक हिन्दू नर्तकी भागमती से उसने विवाह किया और उसी के नाम से नए नगर का नाम भाग्यनगर रखा था। बाद में उसने उसे 'हैदरमहल' की उपाधि प्रदान की तब भाग्यनगर का नाम बदलकर हैदराबाद नगर कर दिया गया। गंगा-जमुनी संस्कृति का समर्थक एवं पोषक होने का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि उसने अपने लिए जो गुम्मद बनवाया था, उसका आधा भाग—मंदिरनुमा हिन्दू शिल्पकला और आधा भाग मुस्लिमनुमा ईरानी शिल्पकला से निर्मित है, जो समन्वित संस्कृति के लिए विश्व-विख्यात है।

मुहम्मद कुली ने अपने 'दक्खिनी काव्य' ग्रन्थ में तेलुगु साहित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कुली के शासन काल में 'जानम', वजही, गवासी, इब्ननिशाही, मुल्ला वजही आदि दक्खिनी के अच्छे साहित्यकार थे। कहा जाता है कि मुल्लावजही ने कुतुबशाही वंश के चार शासकों के शासन को देखा था। वजही की प्रथम रचना 'कुतुबमुशतरी' कही जाती है, जिसमें कवि ने युवराज मुहम्मद कुली को अपने काव्य ग्रन्थ का नायक चुना था। यह मसनवी शैली का एक प्रेम काव्य है।

मुहम्मद कुली एक लोकप्रिय शासक था। उसने स्थानीय आचार-सम्प्रदायों का अनुसरण किया। मुहम्मद कुली और उसके बाद के शासकों ने हिन्दू मंदिरों को विशाल भूभाग दान में देकर अपना संरक्षण प्रदान किया। गोदावरी तट पर स्थित भद्राचलम् रामालय को अबुल हसन कुतुबशाह ने अपार भूमि दान में दी। कुतुबशाही शासक यद्यपि विदेशी थे, फिर भी अपने राज्य की जनता के साथ आत्मीयता और एकता की भावना के कारण उनका शासन अत्यन्त सफल रहा है। इन्हीं सब कारणों से आन्ध्र राज्य की जनता ने मुहम्मद कुली के राजा बनने पर उसे 'बड़ा मालिक' (महान राजा) की उपाधि से सम्मानित किया। उसके निधन पर समस्त राज्य की जनता शोक-सागर में डूब गई। उसके बाद के शासकों ने भी स्थानीय जनता की इच्छा के अनुसार आचार-सम्प्रदाय को, गौरव प्रदान किया और हिन्दू-संस्कृति को आदरपूर्वक सम्मान दिया।

कुतुबशाही शासकों का उद्‌देश्य जहां हिन्दू-मुसलमानों के बीच बन्धुत्व की भावना पैदा करना था, वहीं भाषा के स्तर पर भारत को एक सूत्र में बांधना भी था। यह उल्लेखनीय है कि कुतुबशाही शासकों ने हिन्दू कन्याओं से विवाह किया, परन्तु उनका नाम नहीं बदला और न धर्म ही। तारामती और भागमती आज भी इतिहास में उसी नाम से जीवित हैं।

कुतुबशाही शासकों और उनके आश्रित सभी साहित्यकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं के माध्यम से ऐसी गंगा-जमुनी संस्कृति तैयार करने का प्रयास किया, जिससे भारत में रहने वाले विभिन्न धर्मानुयायी स्वयं को एक ही देश का अभिन्न अंग समझें और देश के गौरव की श्रीवृद्धि में अपना योगदान दें।

धर्मनिरपेक्षता और सर्वधर्म समभाव की दृष्टि से दक्खिनी साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है। आज देश मे बढ़ती हुई अलगाववादी प्रवृत्तियों और साम्प्रदायिक तनावपूर्ण वातावरण में निस्संदेह दक्खिनी साहित्य साम्प्रदायिक सद्‌भावना की प्रेरणा प्रदान करता है। इसका दूसरा पक्ष यह है कि 15वीं शती से अस्तित्व में आए दक्खिनी के गद्य-साहित्य को हिन्दी गद्य-साहित्य (आदि गद्य साहित्य) के इतिहास में स्थान दिया जा सकता है। □

शीलम भवन
घर न. 5-8-104, नामपल्ली स्टेशन रोड,
हैदराबाद-500001

अनहद है



शशिप्रभा शास्त्री

श्यामलता ने पहुंचते ही अपनी दास्तान शुरू कर दी, "दीदी, मेरी जिन्दगी किस कदर नरक बन चुकी है, इसे आप क्या जानें।" श्यामलता की आंखें सूजी हुई थीं ओंठ पपड़ाए हुए, नथुने फड़फड़ाते से, जैसे अभी बोलते-बोलते ही वह फफक उठेगी।

"आखिर हुआ क्या? इधर काफी दिनों से तो प्रशान्त बाबू शान्त ही थे?"

"काहे के बाबू, मेरे लिए तो वे जानवर से बदतर हैं, जो इन्सान ब्राह्मण होकर रात-दिन शराब में डूबा रहे। चलो डूबे रहो, तो डूबे रहो, मैं अपनी आंखें मूंद भी लूं, तो फिर भी शान्ति नहीं, मारपीट पर उतर आए तो फिर अपनी जान बचानी मुश्किल, बताओ इस तरह कोई कब तक झेल सकता है।"

"तो अब मारपीट तक की नौबत आ गई है?"

"आ नहीं गई, यह रवैया तो न जाने कब से रहता रहा है, बस मुंह मैंने अब खोलना शुरू किया है। उनसे भी और तुमसे भी, तुम मेरी पीठ देखो कैसी उधड़ी पड़ी है...।" और कहते-कहते श्यामलता ने पीठ मोड़कर अपना ब्लाउज उठा दिया। दमयन्ती देखकर दंग रह गई, पीठ पर जैसे हंटर पड़े हों।

"हाऽऽय राम, ऐसा क्या कुसूर कर दिया तुमने?"

"बताया न, राजपूतों में शराब खुले आम चलती है, सो ब्राह्मण से इसीलिए शादी की कि यहां तो वह सब देखने को नहीं मिलेगा, पर यहां तो उससे भी बुरी हालत निकली। मना करती हूं तो उधर से भी सुनने को मिलता है, कि मैंने राजपूत लड़की से इसलिए शादी की थी, कि वह तो सब कुछ देख सुनकर ही आई होगी, इसलिए कोई अड़चन नहीं डालेगी, सो मुझे क्या मिला है,क्या मुझे ढंग से जीने का भी अख्तियार नहीं है!"

"तो यह ढंग से जीना है!" दमयन्ती ने ओठों को बिदुराया।

"वही तो मैंने कहा, तो फिर तू तू मैं मैं और वही मारपीट।"

"श्यामलता, मैं कहती हूं, तू इस तरह मर जाएगी।"

"मर ही जाना चाहती हूं दीदी। अब सचमुच जिन्दा रहने को रत्ती भर तबीयत नहीं है।" श्यामलता ने आंसू सूंतते हुए कहा।

"मर जाएगी तो बच्चे? दो-दो लाल पैदा करके दिए, ढाई-तीन हजार रुपयों की कमाई करके दे रही है, सुन्दर सुशील, हर काम में होशियार, अभागे हैं, जो तुम्हारी कदर नहीं जानते।"

"अपना-अपना भाग है दीदी, औरतें पढ़-लिखकर भी क्या पा रही हैं। मर्द तो उसी तरह हावी है, बल्कि और ज्यादा हावी हो गया है, क्योंकि उसे औरत की बढ़ोतरी, शिक्षा, सुन्दरता सबसे जलन होती है, हीन भावना से ग्रस्त हो गया है वह। मैं तो सच कहती हूं, अगर यही हालत रही तो या तो मैं मर जाऊंगी या फिर इसे ही जिन्दा नहीं छोड़ूंगी।"

"क्या करोगी?"

"बच्चों को लेकर कहीं दूर चली जाऊंगी। जो यह समझता है, कि मैं नौकरी नहीं छोड़ सकती। कालेज की नौकरी मुझे दूसरी

जगह नहीं मिल सकती तो मैं दूसरी जगह नौकरी ढूंढ कर दिखा दूंगी, जब ढाई हजार की चपत लगेगी तो...।"

"लो आ पहुंचे, शक के भी मरीज हो गए हैं आजकल तो...।" श्यामलता ने अपनी बात को बीच में ही छोड़ दिया।

"हां, सोचते होंगे, बीवी, सुन्दर हो तो उसके शैदाई भी होंगे ही।" दमयन्ती ने जोड़ा।

"ऐसी ही बातें सुनते-सुनते मेरा जी पक गया है दीदी।"

"मैं तो इसलिए आई थी, कि कुछ अच्छी बातें सुनने को मिलेंगी, यहां यह हालत है। सोचा था, शकुन के यहां मिलने आई हूं, तो तुमसे भी मिलती चलूं, दोनों पास ही पास तो हैं।"

"मैं तो यही नहीं समझ रही, कल कालेज कैसे जाऊंगी, अंग-अंग टूटा पड़ा है।"

"कुछ दवा वगैरा लगाओ, और आराम करो।"

"आराम यहां भाग में कहां है दीदी। अब राजू-सोनू आ जाएंगे।"

"अच्छा तो मैं चली, फिर आऊंगी। मुझे लगता है मुझे देखकर ही प्रशान्त बाबू वापिस चले गए हैं, सोचा होगा, मुझसे बात करनी पड़ेगी।"

"हो सकता है, पर दीदी, मैं तो कहती हूं तुम न ही जाओ, कहीं फिर आकर धुनकने लगें, ऐसे बेह्याओं का क्या भरोसा?"

"सुनो यह किस्सा कब हुआ?"

"कल रात ही तो।"

"तो अब तुरत-फुरत वैसा कुछ नहीं होगा। तुम्हें पता नहीं, इस तरह के लोग भीतर ही भीतर डरपोक भी होते हैं, फिर अब तो वे मुझे भी देख गए हैं, सोच रहे होंगे तुमने मुझसे कहा ही होगा, खैर अब तुम निश्चिन्त रहो, फौरन कुछ होने वाला नहीं है। शकुन के यहां उसका बेटा बीमार है। उसे भी देखना है।" दमयन्ती उठकर खड़ी हुई तो श्यामलता फुसफुसा कर बोली, "दीदी, तुम शकुन के पास जा रही हो। पर उससे कुछ बात मत कहना, वह अभी बच्ची है, अभी सपनों को दुनिया में रह रही होगी। जितनी खुद कोमल है, उतना ही कोमल उसकी मन है। मुझे तो उससे कुछ भी कहते शर्म आती है, इन बातों को वह क्या जाने।"

"ना ना, मैंने क्या कहना है, वह तो सचमुच बेहद कोमल है। हमने उसे बेहद लाड़-प्यार से पाला है—नहीं, नहीं, तुम निशा खातिर रहो। हां, मैं तुम्हारे पास जल्दी ही आऊंगी। देखूंगी, जरूरत होगी तो प्रशान्त से बात भी करूंगी।"

"उधर रहोगी आज की रात?"

"देखो, कुछ पता नहीं, बाकी तुम चिन्ता मत करो, सब ठीक हो जाएगा।"

श्यामलता ने पल्लू से रगड़ कर आंखें पोंछ ली थीं।

उस रात सचमुच दमयन्ती को शकुन के यहां रहना ही पड़ गया। उसके बेटे राहुल की तबीयत कुछ ज्यादा ही खराब थी। शकुन ने जिद्द की, "मां आज रह जाओ, इतना तेज बुखार है इसे, प्रदीप को तो रात के बारह बजे ही लौटना होता है।"

"ओफ्फो, अच्छी नौकरी है यह और तू? तू जा रही है आजकल दफ्तर?"

"जा नहीं रही तो क्या, कल और आज की छुट्टी ली थी। अब बुखार सबेरे तक नहीं उतरता तो कल की छुट्टी और बढ़ानी पड़ेगी।"

"चलो मैं रह जाती हूं।"

बच्चे के कारण दोनों मां-बेटी रात भर जगी थीं। सबेरे के समय दमयन्ती की आंख लग गई थी, पर अचानक प्रदीप की आवाज ने उसे जगा दिया—

"ईडियट, यह खाना देती है तू मुझे! व्हाट डू यू थिंक योरसैल्फ टू बी?"

"मैं दूसरा परांठा ला रही हूं।" यह शकुन की आवाज थी और तभी झन्न से प्लेट फेंकने की आवाज आई थी।

"पहला परांठा क्यों जला? सोचा, कुत्ता है खा लेगा और यह दूसरी बासी रोटी? तुम्हें है अपने पति की कद्र? इस लेडी ने मेरी लाइफ हैल बना दी है।"

दमयन्ती कांप उठी थी, उसका दिल बैठने लगा था। यह क्या—मेरी कोमल-मासूम-सी बेटी यह सब कैसे बर्दाश्त कर रही है? कल शाम श्यामलता ने कहा था, "शकुन क्या जाने...।" दमयन्ती की आंखों में आंसू झूल आए थे, मन किया, अभी बाहर जाए और बेटी को कलेजे से चिपका ले।

पर अभी वह सोच ही रही थी, नहीं चाहती थी, कि पति-पत्नी के बीच जाकर कुछ कहे। किन्तु तभी शकुन भरभरा कर उसके गले से आकर लग गई, "मां, प्रदीप ने मुझ पर हाथ उठाया है।" इस बार दमयन्ती ने आव देखा न ताव, बाहर गई..। प्रदीप से बहुत सहज गंभीर स्वर में बोली, "प्रदीप, ऐसे काम नहीं चलेगा।"

"तो आप ले जाइए इसे उठाकर, आप मेरी बात नहीं समझ पाएंगी, क्योंकि आप मेरी मां नहीं हैं।"

"मैं तो तुम दोनों की ही मां हूं बेटे!"

"नहीं, आप मेरी मां नहीं है, नहीं हैं, नहीं हैं।"

"चलो इस समय खाना खाओ।"

"क्यों खाऊं, क्यों खाऊं खाना? किसे परवाह है मेरे खाने की! शी ट्रीट्स मी लाइक अ डॉग।"

"जब तुम रात को ड्रिंक करके आओगे तो मैं पूछूंगी तुम्हें?"

दमयन्ती एकाएक चौंकी थी। शकुन की बात को टालती हुई बोली, "मैंने कहा न, शान्त हो जाओ, तब बात होगी।" और दमयन्ती कमरे में लौट आई। उसका हृदय भीतर से चकनाचूर हो चुका था। उसकी अपनी बेटी भी इसी हाल में जी रही है, उसे कहां पता था। आज तक शकुन ने उससे कभी कुछ नहीं कहा था। उसने अपनी बेटी को यही सिखाया था कि तुम खुद किसी की

बेइज्जती मत करो, ऐसी नौबत मत आने दो कि कुछ कहने-सुनने की नौबत आए और अगर कोई बेबात तुम पर लांछन लगाए या भला बुरा कहे, तो तुम उसे सहन मत करो। अपनी इज्जत अपने हाथ है। पर यहां तो बेबात तोहमतें लगाई जा रही हैं। बेचारी रात भर जगी है। कहां जगने की आदत थी उसकी, पर अब मां जो बन गई है, सो बच्चे के कारण...पर बच्चे को पालने की ड्यूटी क्या मां की ही है? बाप आधी-आधी रात को घर में घुसता है, उल्टी-सीधी बातें सुनाता है, और खा-पीकर ऐंडा वैंडा सो जाता है। मानो बेटा सिर्फ अपनी मां का ही हो।

दमयन्ती को अपने को 'तुम मेरी मां नहीं हो' कहने की उतनी परवाह नहीं थी, पर बेटी का रिरियाता स्वर और दामाद की दहाड़ती आवाज उसके हृदय को अब भी दहला रही थी।

अपनी बेटी के कोमल स्वर और नरम, शिष्ट प्रकृति को वह जानती थी, भला कौन पत्नी ऐसी होगी कि जानबूझ कर अपने पति को खराब खाना खिलाएगी। पर पति को हालात का भी तो सोचना चाहिए, कि घर में क्या बीत रही है—इस तरह के गर्जन-तर्जन की उसने कल्पना भी नहीं की थी।

प्रदीप के चले जाने के बाद वह भी लौट आई। चलते हुए बेटी से उसने सिर्फ इतना ही कहा था—"तुम इतना अत्याचार सह रही हो, मैं नहीं जानती थी।"

रास्ते भर वह सोचती आई, कि श्यामलता और शकुन में भला क्या अन्तर है। दोनों ही सुन्दर-सुशिक्षित-कमाऊ हैं, फिर भी दोनों ही किस कदर त्रस्त हैं। नारी ने शिक्षा ग्रहण कर अपने पैरों पर खड़े होने की सामर्थ्य जुटाकर भला क्या पाया? इससे अच्छा तो पहले ही था, जब नारी पुरुष के आश्रित रहकर घर में बैठी सुख भोगा करती थी, अनपढ़ औरतें आज भी पढ़ी हुई स्त्रियों से बेहतर हैं। वे इतनी संवेदनशील नहीं होतीं कि छोटी से छोटी बातें उन्हें कचोटें—विचारों के झंझावात से मन रास्ते भर डोलता रहा था। घर की दहलीज पर आकर खड़ी हुई, तो हैरान रह गई देखकर, घर का दरवाजा ज्यों का त्यों बन्द था। वह तो पिछली शाम पड़ोसिन को ताली दे गई थी। कि मेहरी आए तो उससे बर्तन मंजवा लेना। हो सकता है, मेहरी आकर चली गई हो। पर उसके आने का समय तो यही है। सबेरे दस साढ़े-दस बजे। उसे इस वक्त यहीं होना चाहिए था। चलो खोलकर देख लेती हूं।

अपनी डुप्लीकेट ताली से ताला खोलकर दमयन्ती ने देखा—बर्तन ज्यों के त्यों जूठे पड़े थे, शायद पिछली शाम भी आशा नहीं आई है। शकुन के पिता दौरे पर न गए होते, तो यह झंझट होता ही क्यों। उन्हीं के न रहने के कारण दूसरे पर जिम्मेदारी सौंपनी पड़ी। ओह! अब ये सब बर्तन झाड़ू-पोचा...।

तभी आशा आकर खड़ी हो गई थी, "आंटी!"

"अरे आशा तू! तू कल नहीं आई थी?"

"नहीं आ पाई आंटी, माफी मांगती हूं, अब काम करने आई हूं, सब जगह।"

"आखिर हुआ क्या? क्या मेहरसिंह ने कुछ कहा?"

"जी, वही तो मचाता है रार, सारे हाड़-गोड़ तोड़कर डाल दिए हैं।" बीस बरस की आशा की आंखें आंसू ढुलकाने लगी थीं।

"बता तो सही, कमाई कर रही है, उसके बच्चों को पाल रही है, उसे रोटियां ठेप कर खिला रही है, और उसे क्या-क्या चाहिए?"

"मेरा कमाई करना ही तो उसे जहर लगता है, आंटी!"

"क्यों s s??"

"कल इसी बात पे ठन गई। तुम जानो आंटी", आशा जमीन पर ही फुफक्का मार कर बैठ गई थी। "मैं उस दिन आपको बता रही थी, सास का घर भी हमारे घर के पास ही है। बस कल शाम जब मैं यहां से गई तब मैंने बच्चों के लिए रोटी बनाई। सुबह की दाल खटा गई थी। सो कटोरी की दाल जो मैं फैंकने लगी, तो वो देवर पै जा गिरी, देवर उसी दम सामने से निकल रहा था। उसने इत्ती बुरी गाली दी, तो मेहर उबल पड़ा, 'खबरदार जो मेरी घरवाली से कुछ कहा, अपने आप संभल के चला कर।' सुनकर उसे और उसकी मां दोनों को गुस्सा आ गया। देवरानी, ननद भी निकल आईं, पास पड़ोसी भी देखने खड़े हो गए। सास ननद बोलीं, 'तू जोरू की कमाई खा रहा है, इसीलिए उसकी तरफदारी ले रहा है।' बस मूर्ख जो ठहरा। उन लोगों से तो कुछ कहते नहीं बना। मुझ पै टूट पड़ा, कि खबरदार जो तू कहीं काम पे गई, टांगें तोड़ दूंगा।

"तो खिलावे न तुझे कमाकर, तुझे कमाई करने की जरूरत ही क्या है।"

"सो तो है ही, पुताई-रंगाई और मकान-मरम्मत से जो कमाता है, यों होशियार तो बोत कहिए आंटी, पाणो लाता है वह सराब पे उड़ा देता है, घर में तो फूटी कौड़ी भी नहीं देता। बताओ



मैं अपने बच्चों का पेट भरूं, कि उन्हें भूखों मरने दूं।" आशा ने हाथ नचाते हुए कहा।

"तेरे हाथ को क्या हुआ? तेरा हाथ इतना डूंडा नंगा तो नहीं था?"

"मारपीट में कल सारी चूड़ियां जो बिसम गईं, एक भी चूड़ी नहीं बची।"

"और ये बांह पर खरौंचें?"

"बांह थोड़ी आंटी, पूरी पीठ, कूल्हे सब घायल पड़े हैं, चुन्नी देखो कैसी फट गई है।"

आशा की चुन्नी सचमुच फटी हुई थी। खड़ी होकर रसोईघर की तरफ जाने लगी, तो दमयन्ती की आंखों ने देखा—सलवार पर खून के धब्बे थे, कमीज के निचले हिस्से पर भी—

"अरी तेरे तो बहुत चोट लग गई है।"

दमयन्ती का मन पिघल उठा। रसोईघर में जाकर दूध में हल्दी मिला कर उसे पीने को दिया। दो ताजी रोटियां सेंकीं और घी मसलकर उसे थमाते हुए कहा—"ऐसे कसाई के पास रहती क्यों है तू?"

"मैं कहां रहना चाहती हूं आंटी? वो तो बच्चे हैं न, उन्हीं की खातिर।"

"उन्हें तू अब भी तो पाल रही है? अलग रहकर भी पाल सकती है।"

"पाल रही हूं तब तो पालने भी नहीं देगा। मैं उसे क्या छोड़ूंगी वही मुझे निकाल देगा और मेरे बच्चों को मार गेरेगा, बदनामी अलग करेगा। कि मैं जाने किस-किस से जुड़ी हूं। बाकी मैंने कह दिया है आज, कि जादा आफत गेरेगा तो मैं थाने चली जाऊंगी। सो मोहल्ले-पड़ोस वालों ने भी उसे धमकाया, कि उसे डरना चाहिए। अब तुम जानो आंटी, हम लोगों का तो जन्म ही पिटने-कुटने को हुआ है।"

"क्यों हुआ है? तू भी मारा कर उसे। तू क्यों पीछे हटती है?"

"आंटी, मैं क्या मारूं कुटूं, मुझमें तागद है उसे मारने की, तीन बच्चे हुए तीनों के वक्त न कुछ खाया, न आराम लेगा, देखने को ही हैं ये हाथ पैर।"

दमयन्ती ने आशा के चेहरे की तरफ देखा, सचमुच उसके जिस सांवले चेहरे की लुनाई और चिकनाहट की वो मन ही मन तारीफ करते नहीं अघाती थीं, वो आज बेहद हड़ियारा दिख रहा था। आशा कह रही थी, "आंटी आप बड़े लोगों के घर अच्छे हैं, वहां मियां-बीबी में समझ होती है, दोनों प्यार-मोहब्बत से रहते हैं, अपने बच्चों को पालते हैं, पढ़ाते-लिखाते हैं।"

दमयन्ती ठठाकर हंसी थी, मर्द की जात में समझ कहीं नहीं है, न बड़े घर में न छोटे घर में, सब अहम् के पुतले हैं, कहीं कोई फरक नहीं है, और खैर, समझ तो औरतों में भी...।" दमयन्ती कुछ और कहने जा रही थी, कि बरतनों को घसीटती हुई आशा बोली,—

"आंटी, आज मैं इत्ती मुस्किलों में इधर आई हूं।"

"क्यों?? किसी ने कुछ कहा?"

"रस्ते में कोई कुछ क्यों कहता, फटे कपड़े, उन पर धब्बे, पतली-छोटी गलियों से लुक-छिप के आई हूं। बदलने भर के लिए लत्ते नहीं थे मेरे पास। मेहरू ने गुस्से में न जाने कित्ते कपड़ों में कैरोसीन लुढ़का दिया, वैसे ही बहुत कम कपड़े थे मेरे पास।"

"यह नुकसान और हुआ, काम बढ़ा सो अलग।"

बरतनों की रगड़ के बीच आशा ने जो कुछ कहा, दमयन्ती वह सुन-समझ नहीं पाई। वह सोच रही थी : श्यामलता और शकुन दोनों अपनी नौकरी पर अच्छी-अच्छी साड़ियां पहन कर गई होंगी, श्यामलता ने एक दिन उससे कहा भी था, जिस दिन कुछ रंजिश होती है, उस दिन मैं कुछ खास ही रंगीन बढ़िया कपड़े पहन कर जाती हूं। चेहरे के पीले मुरझाएपन को कपड़े ढांप लेते हैं। पर आशा? यह बेचारी तो दोनों ही तरफ से उघाड़ी है। □

3/6, भगवान नगर,
देहरादून

ग़ज़लें

(एक)

इतना ज्यादा उधार रहता है,
कर्ज सिर पर सवार रहता है।
उसको विश्वास ही नहीं आता,
शान्त सागर में ज्वार रहता है।
मैं नहीं पार कर सका सीमा,
और वो सीमा के पार रहता है।
उसको चलने में लुत्फ आता है,
वो जो नदिया की धार रहता है।
मैं भी इस बात को समझता हूं,
उसके गुस्से में प्यार रहता है।

जहीर कुरेशी

(दो)

'दे वदासों' के पास मत रहिए,
जिन्दगी भर उदास मत रहिए।
वस्त्र भी तन पे बोझ बन जाएं,
इस कदर बेलिबास मत रहिए।
'आम' बन कर भी देखिए, साहब,
घर के अंदर तो 'खास' मत रहिए।
उठिए, हो जाइए खड़े तन कर,
उनके कदमों में घास मत रहिए। □

समीर कॉटेज, सूर्य नगर
ग्वालियर-474012 (मध्य प्रदेश)

अकेला वृक्ष जंगल नहीं बन सकता

अशोक गुप्त



जब भी
टंग जाता है
दरख्तों की शाख पर
आदमी का चेहरा
नाचते पत्तों के पर लग जाते हैं।
वो
झूमते हैं
अपनी धुन में गाते हैं
बोलते, बतियाते हैं
और
इस तरह
जाग जाता है जंगल।
पलास के पेड़ पर
नई कोपलों की सुगबुगाहट देख
बुजुर्ग बरगद का
चेहरा खिल जाता है।

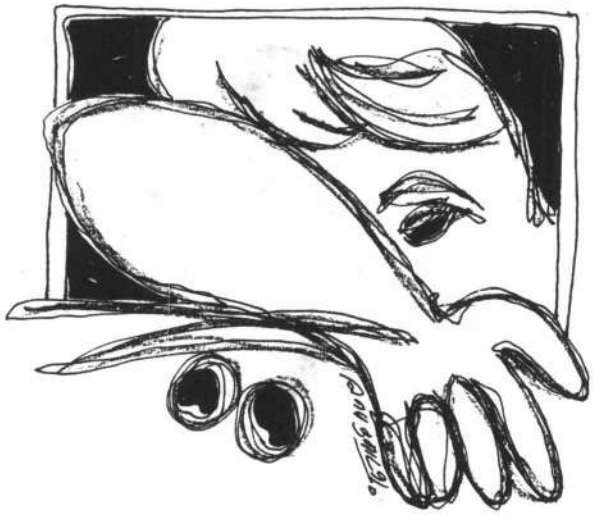
सैकड़ों बाहों की
मजबूत
हथेली पर टिका आसमान
जंगल के
अलग-अलग टोले से उठने वाली
चीखों से पट जाता है
और
हवाओं में
साथ-साथ
जीने-मरने की खुशबू का दम
घुटता चला जाता है।
मंडराते हुए गिद्धों की परछाइयां
उतर आती हैं जमीन पर।
सहमा हुआ जंगल
घायल शिकार की तरह
हांके के
ढोल-ताशे से गनगनाया हुआ
भागना चाहता है
मगर
लुटेरों का सरगना
जंगल को
सरई
शीशम

और सागौन में बांट कर
टुकड़े-टुकड़े कर देता है।

शीशम के सख्त तने पर
जब चलती है कुल्हाड़ी
तब
कीमती सागौन
अपनी खैर मनाता है
और
सागौन की टहनियां
जब
कट-कट कर गिरती हैं
तब
सरई
मौन साधे खड़ा रह जाता है।
इस तरह
चरागाह बना जंगल
ठूंठों से पट जाता है।

अमरबेल की तरह
पनपता हुआ जंगल का ठेकेदार
कटे हुए कूप की पहचान करता हुआ
चीरघर में
चलने वाली मशीनों की पीठ ठोंकता है
और
फांसी के फंदे में झूलता
जंगल का टूटा हुआ चेहरा
हवाओं में उड़ रहे
लकड़ी के बुरादों से ढंक जाता है।
पानी में तैरती है
वृक्षों की लाशें
और
नदी के किनारे खड़ा
बुजुर्ग बरगद
जानता है इस बात को अच्छी तरह
कि
अकेला वृक्ष
जंगल नहीं बन सकता। □

सदर रोड अम्बिकापुर (म. प्र.)
जयस्तंभ के समीप 497001



प्रेम

नरेन्द्र मोहन

प्रेम में सिर्फ
आकाश दिखता है
और आकाश में
उड़ता दिखता है परिंदा
यह परिंदा कभी चक्राकार घूमती
सोन मछली में तब्दील होने लगता है
मेरी स्मृति में
और मुझे दिखती हैं सिर्फ
एक जोड़ी आंखें
पूरे ब्रह्मांड में
मुझे बुलाती
मेरा पीछा करती
मेरे पास न धनुष है न बाण
एक जोड़ी आंखें हैं
तुम्हारी आंखों में तल्लीन! □

प्रेम : एक समुद्र

एक तार छुआ भर
और हिलोरें लेता समुद्र
दहलीज तक आया
और लौट गया
मेरी चुप्पी में समा गया
चुपचाप
एक समुद्र। □

239-डी, एम. आई. जी. फ्लैट्स,
राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027

रघुबर की औरत

अतुल शर्मा

रोटियों से भी अच्छी रोटियां
बना रही है
–रघुबर की औरत।

बहुत कम बीमार पड़ रही है
–रघुबर की औरत।

घर पर सारा काम करके
काम पर जा रही है
–रघुबर की औरत।

बारिश में भीग कर
धूप में सूख रही है.
–रघुबर की औरत।

बस्ती की नदी को
पार कर रही है
–रघुबर की औरत।

डूब कर
किनारे तक पहुंच रही है
–रघुबर की औरत।

चायपत्ती उधार ले रही है
–रघुबर की औरत।

मिट्टी का तेल ला रही है
–रघुबर की औरत।

आग बनती जा रही है
–रघुबर की औरत।

अच्छी लग रही है
–रघुबर की औरत।

कीमती सोना निकालने के लिए
तोड़ी जा रही है
–रघुबर की औरत।

पत्थर बन रही है
–रघुबर की औरत।

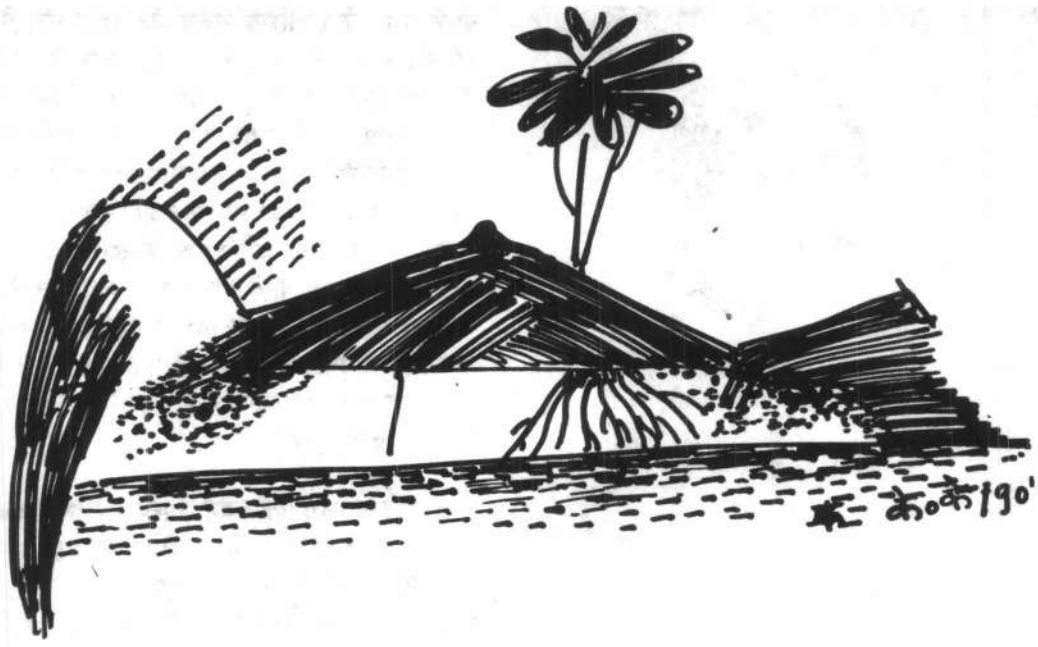
भट्टों में दहक रही है
–रघुबर की औरत।

धुआं ओढ़ रही है
–रघुबर की औरत।

बिक रही है
–रघुबर की औरत।

रघुबर की लड़कियां पैदा कर रही है
–रघुबर की औरत। □

38, लिटन रोड, देहरादून (उ. प्र.)248001



पिरो लें सीपियों के हार

अमरजीत सिंह

सागर की लहरों से
अलमस्त
आओ खेलें,
पिरो लें सीपियों के हार
बिखरी हैं जो सागर तट पर
सपनों-सी...।
हम धरती के फूल सुकोमल
खिलेंगे हर जगह,
बिखेरेंगे हम अपनी महक को
हर घर के आंगन में।
आंख-मिचौनी खेलती
ये तितलियां
कितनी सुंदर हैं,
कितने मीठे हैं
चिड़ियों के गीत,
कितने प्यारे हैं
चंदा, तारे, नीला आकाश!
यह सब हमसे मत छीनो
हम नन्हे-नन्हे बालक हैं
कल का भविष्य,
न बांटो घृणा हमको
हो सके तो अपना प्यार दो। □

1584, गुलाबी बाग,
दिल्ली-110007

नवगीत

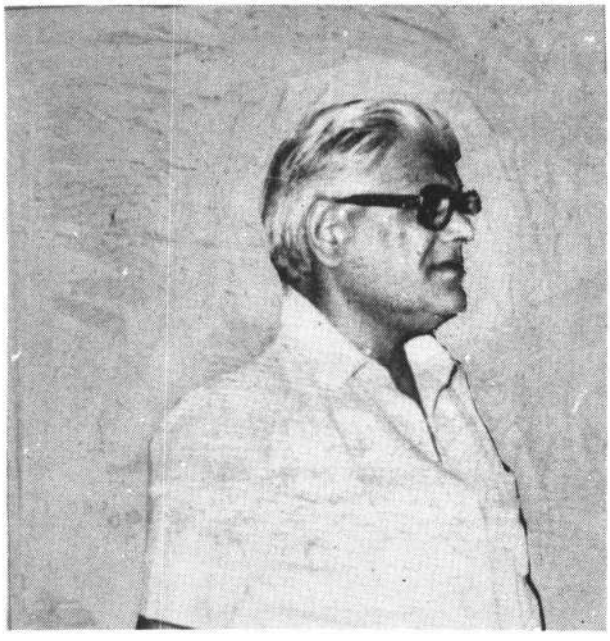
ओ. पी. श्रीवास्तव

चूल्हे की आंच से
जले रोज-रोज-ही
कामना थी पाने की
सूरज के ओज की।

शहर की यह जिन्दगी
धूल और धूप-सी
तिनके-सा अस्तित्व
और चेतना कूप-सी

ताजे प्रश्न मचल रहे
बन्द मुट्ठियों में
लिखते हैं हाल–'अच्छा'
दूर जाती चिट्ठियों में। □

डी-1294, पिकनिक स्पाट रोड,
इन्दिरा नगर, लखनऊ-226016



कथाकार—रमाकांत

राजकुमार सैनी

रमाकांत अपने बारे में लगभग मौन और शांत रहने वाले रचनाकार थे। फिर भी हर लेखक अपने बारे में कभी न कभी कुछ न कुछ कहने के लिए विवश और अभिशप्त हो उठता है। ऐसे ही किन्हीं क्षणों में रमाकांत ने कहा था—

"लेखकीय जीवन सामने है और निजी जिंदगी बताने की चीज नहीं। जीवन में कभी स्थापित होने की कोशिश नहीं की इसलिए इसका खतरा महसूस होते ही अपने आप को स्थापित कर हमेशा डावांडोल हालत में रहा। एम.ए. की पढ़ाई छोड़ कर कलकत्ता भागा, कई प्राइवेट दफ्तरों में और इंडियन एयर-लाइन्स तक में नौकरी की, उसे छोड़ कर पत्रकारिता अपना कर दैनिक 'आज', 'जनयुग' आदि के बाद होते-हवाते जब 'सोवियत भूमि' का संपादक बन गया तो सत्रह साल बाद उसे भी छोड़ दिया—सब इसलिए कि भीतर का लेखक न मरे।"

रमाकांत लगभग साठ वर्ष जिए। अन्तिम क्षण तक उनके भीतर का लेखक नहीं मरा। भीतर का लेखक न मरे इसलिए उन्होंने कई नोकरियां कीं और छोड़ दीं। दो तरह के लेखक होते हैं—एक वे जो जीवन में सफल और स्थापित हो जाते हैं लेकिन उनके भीतर का लेखक मर जाता है। वे एक लेखक की लाश की तरह दिखाई देते रहते हैं। दूसरे वे जो स्वयं जीवन के मोर्चे पर अन्तिम क्षण तक अपने भीतर के लेखक को जीवित रखने के लिए संघर्ष करते रहते हैं और उस भीतर के लेखक की रक्षा करते-करते अपने प्राण दे देते हैं। खुद मर जाते हैं लेकिन उनके भीतर का लेखक जीवित रहता है। रमाकांत ऐसे दूसरी तरह के एक लेखक थे।

सहज जीवन और सहज ढंग का लेखन करने वाले रमाकांत अपने समय के सर्वाधिक बहुज्ञ लेखकों में एक थे। विश्वकथा साहित्य के वे एक दुर्लभ पाठक थे। टॉलस्ताय के परम विशेषज्ञ और मार्क्सवाद के गहन अध्येता थे। लेकिन किसी तरह का कठ-मुल्लापन, संकीर्णतावाद (चाहे वह मार्क्सवादी ढंग का हो या गैर-मार्क्सवादी ढंग का) उनमें नहीं था। उनका हृदय प्रायः मुक्त दशा में रहता था तथा मस्तिष्क ज्ञान-पिपासु था। ज्ञान की हर शाखा उन्हें वृक्ष की हरी शाख की तरह आकर्षित करती थी। अन्तर्मुखी होते हुए भी वे आत्म-मुग्ध नहीं होते थे तथा बहिर्मुखी होते हुए भी समाधिस्थ से दिखाई देते थे। जोर-जोर के ठहाके लगाते हुए उनकी आंखें झील जैसी हो जाती थीं। भयंकर रूप से क्रुद्ध हो जाने पर वे एक-दो कड़े वाक्यों का उच्चार कर मौन मुनि की तरह चुप्पी साध लेते थे।

उन्होंने लगभग एक दर्जन उपन्यास लिखे, जिनमें 'टूटे लोग', 'खोई हुई आवाज', 'छोटे-छोटे महायुद्ध', 'तीसरा देश', 'समाधान', 'मैं हत्यारा', 'प्यादा-फर्जी-अर्दन', 'दरवाजे पर आग' और 'उप-संस्कार' उल्लेखनीय हैं। इनमें 'छोटे-छोटे महायुद्ध' और 'तीसरा देश' बहुचर्चित रहे। 'दरवाजे पर आग' के फ्लैप पर लिखा है कि 'बूढ़ी मिट्टी' नामक एक वृहद उपन्यास पर वे कार्यरत थे। 'उप-संस्कार' उपन्यास के फ्लैप पर भी उनके एक विशाल उपन्यास के लेखन में व्यस्त होने का उल्लेख है। शायद इसी उपन्यास पर अन्तिम क्षणों तक वे ध्यान देते रहे थे। उनके घनिष्ठ अनुज-वत मित्र श्री महेश दर्पण से मालूम हुआ कि उन्होंने यह उपन्यास लगभग पूरा कर लिया था। शायद इसी उपन्यास को वे 'जलूस का आदमी' अथवा 'जलूस में एक आदमी' शीर्षक से प्रकाशित कराना चाहते थे। उनकी यह अंतिम इच्छा उनके जीवनकाल में पूरी न हो सकी, अब होगी, जब होगी। इसी वर्ष अगस्त मास में उनका अकाल निधन हो गया।

लेखक के कहानी संग्रहों में 'जिंदगी भर का झूठ', 'उसकी लड़ाई' तथा 'कोई और बात' चर्चित रहे हैं। 'उसकी लड़ाई' शीर्षक कहानी संग्रह की भूमिका मैंने लिखी थी। उसका एक अंश यहां उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा क्योंकि उससे उनकी कहानियों के बारे में मेरी धारणा अभिव्यक्त हुई है:

"पानी गहराइयों में से गुजरता है तो शोर नहीं करता। रमाकांत की कहानियों में शोर सुनाई नहीं देता। एक संजीदा किस्म का अहसास जगाती हुई ये कहानियां इस तथ्य का भी अहसास करा देती हैं कि रमाकांत के बाल धूप में सफेद नहीं हुए। जिंदगी की चिलचिल्लाती धूप में दुर्गम और विषम रास्तों से होते हुए वे इस मंजिल तक पहुंचे हैं।"

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डा. विश्वनाथ त्रिपाठी ने उनकी 'तेवर' कहानी की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया था। भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', अमरकान्त की 'हत्यारे', शेखर जोशी की 'दाज्यू', ज्ञानरंजन की 'बहिर्गमन' जैसी श्रेष्ठ कहानियों की सूची में रमाकांत की 'तेवर' कहानी को भी शामिल किया जा सकता है। रमाकांत ने और भी कई महत्वपूर्ण कहानियां लिखी हैं जैसे 'जिंदगी भर का झूठ', 'बयान', 'भय लौटा दो', 'व्यतिक्रम', 'उसकी लड़ाई' और 'कार्लो हब्शी का सन्दूक'। रमाकांत की

कहानियों में सामाजिक सरोकार के ताने-बाने उनके निजी रंग में रंगे होते हैं। यह सामाजिक सरोकार स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यंजित होता रहता है। बदलते हुए पारिवारिक और सामाजिक मानव-संबंधों की व्यथा और कथा को उन्होंने गहरे और सोचनाम स्तरों पर झेला था। यह 'झेलना' उनकी कहानियों में (और उपन्यासों में भी) बराबर संप्रेषित होता रहता है। जीवन के राग-विराग यहां व्यापक और सामाजिक अन्तः संबंधों तथा अन्तर्विरोधों के साथ अभिव्यक्त होते हैं। लेकिन यह अभिव्यक्ति शांत, स्वाभाविक, सहज, मूक, मौलिक और निजी ढंग की होती है।

रमाकांत का चर्चित उपन्यास 'छोटे-छोटे महायुद्ध' निम्नमध्यवर्ग की इच्छाओं, आकांक्षाओं, अतृप्तियों, कुंठाओं, संघर्षों और असफलताओं को भरपूर ईमानदारी और जागरुकता के साथ चित्रित करने वाली एक महत्वपूर्ण कृति है। यह उपन्यास बेरोजगारी के साथ-साथ अल्परोजगारी की ओर भी वह ध्यान आकर्षित करता है। उपन्यास की एक बड़ी सार्थकता यह है कि वह मौजूदा व्यवस्था के छल-छद्मों, नए-नए काट की चालों, झूठे आश्वासनों, फूहड़ खुशफहमियों और क्रूर-आचरण-संहिताओं को दिगम्बर करता हुआ आदि से अंत तक पाठकों के साथ सहज-संवाद बनाए रहता है। उपन्यासकार इस संवाद को कहीं भी बोझिल नहीं होने देता। उपन्यास के लल्लन बाबू विक्षिप्त हो गए क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि क्लर्क का बेटा क्लर्क ही बने। लेकिन व्यवस्था का दुश्चक्र ही एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार की अभिशप्त नियति बन गया है। उपन्यासकार रमाकांत के शब्दों में—"यही तो होता है व्यवस्था का नियम। व्यवस्था को चलाते रहने के लिए हमेशा नया ईंधन चाहिए और इस तरह कि व्यवस्था-चक्र का चारा बनने वाला हर व्यक्ति इसे अपने ऊपर एक अहसान समझे...।" मैंने जनयुग के रविवारीय अंक में इस उपन्यास पर एक समीक्षात्मक आलेख लिखा था। उस आलेख में कुछ मुद्दों पर कड़ी आलोचना भी की थी, लेकिन तब भी रमाकांत मुझसे नाराज नहीं हुए। उल्टे और मेरे नजदीक आए और घनिष्ठ होते गए। एक बार मैंने इसका जिक्र किया तो बोले—"तुम रचनाएं पढ़ते हो, उन पर सोचते हो, फिर कुछ मुद्दों पर सहमत और कुछ पर असहमत होते हो, तो उसमें बुराई क्या है? ये तो अच्छी बात है।"

उन्हीं दिनों अन्य लेखकों की रचनाओं के बारे में भी मैं 'जनयुग' में टिप्पणियां लिखा करता था। तनिक-सी आलोचना होने पर कई लेखक तुनक पड़ते थे। कई तो शत्रुवत व्यवहार करने लगते थे। लेकिन रमाकांत मेरे मित्र बन गए और फिर अंतिम क्षणों तक मुझे स्नेह देते रहे। यही उनके व्यक्तित्व का औदार्य था, जो उनके कृतित्व में भी अभिव्यक्त होता रहा।

रमाकांत का दूसरा महत्वपूर्ण और चर्चित उपन्यास 'तीसरा देश' जब प्रकाशित हुआ तो उस पर मैंने समीक्षात्मक टिप्पणी लिखी। फिर इसी उपन्यास पर नवभारत टाइम्स में एक आलेख लिखा।

'तीसरा देश' या तीसरी दुनिया का एक देश जिसके अन्तर्गत गतिरोधग्रस्त होते हुए मानवीय संबंधों के अपविकास की कथा कहते हुए रमाकांत पाठकों को उद्वेलित, द्रवित और आन्दोलित करते दिखाई देते हैं। उपन्यास की प्रमुख पात्र माधवी हमारे युग की एक संजीदा स्वभाव की नारी है जो समय के बदलाव को झेल रही है। समय बदल रहा है लेकिन मानव संबंध कहां बदल रहे हैं? वे तो गतिरोध के शिकार हो गए हैं या फिर अपविकसित होते जा रहे हैं। माधवी समय के इस तेज बदलाव को, मानव-संबंधों के इस गतिरोध और अपविकास को एक साथ झेल रही है, पूरी शिद्दत और संजीदगी के साथ, कड़ुवाहट के साथ, थरथराहट के साथ। इस बदलाव में मनुष्य के संवेदनशून्य होने का खतरा है। माधवी अपने को संवेदन शून्य न होने देने के लिए कृतसंकल्प है। लेकिन संवेदनशील होने का मतलब अनुमति बोधक होना नहीं है।

माधवी ने यौवन की देहरी पर पांव रखा ही था कि रोहित से उसका सामना हुआ। रोहित उसे अपनाना चाहता था लेकिन उसके माता-पिता उसे एक 'बड़ा आदमी' बनाना चाहते थे। किसी नवधनाढ्य घराने की लड़की को पूरी उत्सववादिता ओर साज-सामान के साथ बहू बनाकर घर लाने का उच्च मध्यमवर्गीय स्वप्न देखते थे। बेटे की भावनाओं का गला घोंटकर वे उसे एक 'सफल' कैरीयरिस्ट उच्चवर्गीय नागरिक बना देना चाहते थे। माधवी ठहरी एक निम्नमध्यमवर्गीय परिवार की औसत दर्जे की लड़की, उसमें वे गुण कहां? एक हद तक उनका वह सपना पूरा हुआ, लेकिन रोहित के मन में माधवी को लेकर एक सपना जगा था, जो पूरा न हुआ।

परिस्थितियों ने माधवी को नौकरी करने के लिए महानगर की ओर धकेल दिया। उसकी शादी की उम्र निकल गई। जब माधवी ने जाना कि महानगर में आकर उसे रोहित के ही विभाग में उसी के मातहत के रूप में कार्य करना पड़ेगा तो उसने पलायन करना चाहा। रोहित ने उसे ऐसा करने नहीं दिया। रोहित विभागाध्यक्ष था, विवाहित और बालबच्चेदार था। लेकिन मन से वह आधुनिक नहीं हो पाया। अपने परिवेश की सारी वास्तविकताओं को नजरअन्दाज कर वह अतीत में लौट जाना चाहता था। जो लड़ाई उसे वर्षों पहले अपने माता-पिता से लड़नी थी, वह लड़ाई अब वह अपनी पत्नी कांता और ससुर श्री सत्येन्द्र नाथ बख्शी के साथ लड़ रहा है। मगर उससे फायदा...?

क्योंकि माधवी भी तो वह माधवी नहीं रही। उसका ब्याह नहीं हो पाया तो क्या, वह आमूल-चूल बदल चुकी है। रोहित ने यथासमय उसे नहीं अपनाया और एक आज्ञाकारी पुत्र का कर्तव्य निभाया। उस अपमान को भी वह आज तक भूल नहीं पाई है। फिर उसने मौजूदा समाज में देर तक अविवाहित रहने की परेशानी को भी झेला है, इधर-उधर नौकरियां की हैं, गरल के घूंट पिए हैं, बहुत से कटु अनुभवों और टेढ़ी-मेढ़ी दिक्कतों के दौर से गुजर चुकी है। अतः वह पहले जैसी नहीं रही। अब जाकर रोहित को अपनाना उसके लिए उतना सहज नहीं जितना कि वह कुछ वर्ष पहले होता! फिर कोई भी अवांछित कदम उठाकर, रोहित की पत्नी और बच्चों के प्रति किए जाने वाले किसी भी अन्याय में वह भागीदार क्यों हो? लेकिन रोहित है कि सारी

(शेष पृष्ठ 45 पर)

राधा के पाँव

डा. गंगेश गुंजन



राधा पूरी सड़क पर यहां से वहां तक अकेले चल रही थी। इस बड़े शहर की सड़कें—तिस पर भी फ्रैजर रोड-इतनी सुनसान कभी नहीं मिल सकती। इस सड़क पर राधा अकेली और थकी हुई चल रही थी। जिसने उसे इस सड़क पर चलते हुए पहले कभी देखा है उसे हठात विश्वास ही नहीं होता कि राधा इतना धीरे और उदास भी चल सकती है।

ऊपर सूरज मानसून से ठीक पहले की धूप उगल रहा था। नीचे सड़क का कोलतार दम तोड़ कर पसर रहा था। छोटी बड़ी सभी दूकानें और दूकानदार मजबूर-से, दुबके लग रहे थे और कभी-कभी सिहक उठने वाली हवा भी, अब एकदम उस बनिए की तरह गुम थी, जो अपने वैसे सूदखोर को दुबारा कर्ज नहीं देना चाहता, जिसने समय पर सूद नहीं लौटाया हो और ऊपर से सूद की दर कम करने के लिए हुज्जत करता हो।

दूकानों में पंखे चल रहे थे और सूक्ष्म बालू के गर्म रवे की तरह पसीनों में चिपका रहे थे। सबके सब ठंडा पानी तलाश रहे थे।

इस छोटे से महानगर में दिल्ली की तरह प्याऊ आदि की कोई जगह नहीं। सभी दफ्तरों में फ्रिज की व्यवस्था नहीं। जहां है भी वहां अधिकतर खराब पड़ा है। मान लीजिए खराब नहीं भी है, तो वहां आम लोगों के पीने के लिए तो इन्तजाम किया नहीं गया है।

राधा पूरे शरीर बूंद-बूंद पसीने से भरी थी। उसकी भरी हुई गोरी देह पर, दफ्तरों में काम करने वाली महिला की तरह, मैच करती हुई औसत गुलाबी साड़ी थी और ब्लाउज। बूंदों से जहां-जहां भीगी थी साड़ी, गुलाबी की छींट-सी लग रही थी। जहां पसीना पूरा फैल गया था वहां गाढ़े गुलाबी धब्बे की तरह हो रहा था। राधा की बाईं बगल से ब्लाउज गीला था और कंधे से एक औसत तरह का बैग लटक रहा था, जैसा बैग आमतौर से इस शहर की कुछ खास कामकाजी महिलाएं अपने या पड़ोसिन के पतियों से, दिल्ली से सस्ता खरीदवाकर मंगाती हैं जो वहां के स्तर से अपेक्षाकृत रूआबदार भी लगता रहता है।

राधा का बायां कंधा ब्लाउज बैग के फीते की तरह पसीने से चिपका था और जगह-जगह अन्दर ब्लाउज कहीं गाढ़ा कहीं उदास झांक रहा था। शायद इसका अहसास उसे था। इसके लिए गर्मी के बावजूद बार-बार पल्लू से शरीर ढकने की कोशिश करती जाती थी और सड़क पर बढ़ी जा रही थी।

राधा को कोई भी देखता तो महसूस करता कि उसके होंठ प्यास से सूखे हैं और वह पानी चाह रही है। वह दाहिनी ओर से चल रही थी। सड़क के ठीक किनारे जहां खिरनी का बड़ा-सा घना वृक्ष है, जिसकी छाया में दर्जी से लेकर बीड़ी की दूकानें हैं और जिस पर इस लू वाली दुपहर में कौवे से लेकर पनछुआ पंछी सुस्ता रहे होते हैं, राधा के पैर अनायास ठिठक गए। प्यास बहुत लगी थी। लेकिन छाया ज्यादा अच्छी लगी, सो वह दो क्षण रुकी। पसीना पौंछा पल्लू चिपका-चिपका कर। फिर अचानक ऐसा महसूस किया कि वह काफी देर सुस्ता चुकी है। प्यास तेज महसूस होने लगी। उसने मन ही मन हिसाब लगाया कि अगर शरीर से निकले हुए पसीने को किसी तरह गिलास में जमा किया जा सकता तो वह उसी से तृप्त हो चुकी होती। पानी तलाशने में नहीं भटकती।

राधा इस शहर में बीस बरस से रह रही है। इसकी हालत में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। सिवाय इसके कि अधिकतर चौराहे फैल गए हैं। जैसे नुक्कड़ वाली राशन की दूकान वाले की तौंद फूल गई है। या एक से दो भव्य साईन बोर्ड टांग दिए गए हैं जिस पर लिखा है रोटरी क्लब या लायन्स क्लब के सौजन्य से। जबकि जन सुविधा की कोई व्यवस्था यहां से वहां तक सड़क पर नहीं है। जैसे इस लू में पानी-कल की पनशाला ही होती जगह-जगह तो लोगों को कितनी राहत पहुंचती।

राधा स्वयं झुंझला गई और चप्पलों से बारी-बारी अपने पैर निकाले। तलवों में कल्पित हवा लगवाई जो पसीने से गीले हो गए थे। फिर कुछ तय करती हुई एक बार पीछे देखकर बाईं ओर से सड़क पार करने लगी।

वृक्ष के नीचे की दूकानों के लोग उसके बारे में अटकलें लगा रहे थे ऐसा राधा को महसूस हुआ था और तभी वह झटके से उस ओर बढ़, सड़क पार कर गई। क्योंकि प्यास की घड़ी में उसे सामने का विशाल दफ्तर याद आ गया था जहां ठंडे पानी की अच्छी व्यवस्था है और जहां कृष्ण कुमार के चलते उसे बहुत-सा स्टाफ जानता भी है। पंखे के नीचे थोड़ा सुस्ताएगी और छक कर पानी पीएगी। फिर चली आएगी। राधा की चाल में थोड़ी जल्दी और चुस्ती आ गई। वह जल्दी ही उस बड़े सरकारी दफ्तर के अहाते में पहुंच गई और पोर्टिको में खड़ी होकर सोचने लगी कि किसी सैक्शन में बैठकर इत्मीनान से पानी पिया जाए या एक अनजान प्यासी औरत की तरह जनता बनकर चुपचाप पानी पीकर खिसक लिया जाए? लेकिन उसके पैर अंततः कृष्ण कुमार के कमरे की तरफ ही बढ़ गए। बढ़ तो गए, लेकिन वह कमरे में प्रवेश नहीं कर सकी और उल्टे पांव लौट आई। फिर प्रतीक्षा की जगह तलाशने लगी जहां दो पल बैठ सके। प्रबन्ध फटा नहीं था। यानी गद्देदार सोफे रखे थे। बीच में मेज और ऊपर दो-दो पंखे चल रहे थे। वहां भी एक आध बार वह कृष्ण कुमार के रहते उसके साथ बैठकर बातें कर चुकी है।

वह बैठते-बैठते उठ गई। तब तक एक किरानी बाबू जो कृष्ण कुमार के सैक्शन में काम करता था और कई वर्षों से एक ही मेज पर बैठ रहा था, पास आया और नमस्ते करता हुआ पूछने लगा—'क्यों उठ गईं मैडम? बैठ लीजिए। थोड़ी देर, राधा जी।' राधा को उसका यह व्यवहार खूब अच्छा लगा। बड़ी सूक्षमता से उसकी आंखें आंसू से सुरमई हो गईं।

हां। आप लोग कैसे हैं? राधा ने पूछा।

क्या रहेंगे? बॉस के जाने के बाद तो जैसे यह दफ्तर नहीं कबाड़-खाना ही हो गया है। दूसरे-दूसरे सैक्शन सब तो खैर पहले से ही था। अब हमारा सैक्शन भी...।' वह अफसोस करता हुआ कहने लगा।

'बॉस इस बीच कभी आए थे या नहीं?' राधा ने पूछा। लेकिन उसकी बनावटी तटस्थता उस युवक से छुपी नहीं रही।

उसने कहा—मैं तो सोच रहा था कि आप से पूछूं। यहां तो नहीं आए कभी मद्रास जाने के बाद/वह बोला और अचानक हड़बड़ा उठा। उसने रामधन चपरासी को बुलाया और जल्दी से गिलास में कूलर का पानी लाने को कहा। खूब जल्दी। फटाफट।

फिर उसने क्षमा मांगते हुए कहा—मैं तो भूल गया था। आपको प्यास जरूर लगी होगी। देखिए न बजाय पानी पिलाने के 'मैं आपको बातों में उलझा बैठा।'

राधा को अब अचानक जैसे, अपनी प्यास तीखी होकर सताने लगी और वह पानी के लिए बेचैन हो उठी। तब तक उधर से आदमी पानी ले आया। उसने गिलास लेकर गटा-गट पीया और कृतज्ञता से उस युवक को देखने लगी, जो उसके छोटे भाई की तरह लग रहा था। युवक ने दूसरे भरे गिलास की ओर देखते हुए पूछा—'और?'

राधा ने मना किया कि वह उसके लिए है। 'कोई बात नहीं। मुझे उतनी प्यास नहीं लगी है। बाद में मंगवा कर पी लूंगा। आप पीजिए।' राधा ने वह गिलास भी दो तिहाई तक पी कर मेज पर रख दिया और पल्लू से होंठ पोंछते हुए कहा—'बड़ी प्यास लगी थी। मैं तो झिझक रही थी कि पता नहीं यहां कोई पहचाने या नहीं?'

—वाह आपको नहीं पहचाने? ऐसा कैसे हो सकता है? बॉस हमारे इतने अच्छे थे, इतने अच्छे थे कि हम लोग उनके साथ-साथ उनके मित्र तक को शक्ल और नाम के साथ याद करते रहते हैं, जिनका उठना बैठना था उनके चैम्बर में। हम लोगों को बहुत याद आते हैं बॉस। और तो जो था उनमें था ही, सैक्शन में पानी की व्यवस्था के लिए वे इतने सख्त थे कि क्या कहना। हम लोग कभी यदि देर-सबेर आवें और देरी के लिए सफाई देने लगें तो वे हंसते और कहते-बैठो-बैठो पहले पानी पीओ एक गिलास, फिर बातें करते हैं। वह नौजवान खूब भावुकता और सच्ची याद में बोले जा रहा था और राधा भीतर से टूटकर फफक रही थी। बाहर व्यक्त नहीं होना चाहती थी। उसके लिए इस स्थिति में वहां एक पल भी और ठहरना कठिन हो गया। वह अचानक उठती हुई बोली—'अच्छा भैया...'

—'अरे-अरे राधा जी क्यों उकता गईं आप? बिना चाय पीये आपको जाने दे सकता हूं भला?' उसने बड़े स्नेह से कहा।

—'फिर कभी। आज तो सिर्फ पानी पीकर जाती हूं। इतनी गर्मी में चाय खराब ही लगती है और मैं तो यों भी चाय कम ही पीती हूं आप तो जानते ही हैं।' वह नमस्ते करके वहां से तेजी से निकल पड़ी कि लगता था जैसे शुरू-शुरू में जब वह दफ्तर के लिए तैयार होकर, जैसे ही चलने लगती थी कि दो साल की बड़ी बेटी आंचल पकड़ कर खींचती रही थी—मम्मी मत जाइए और इसी भय से वह जल्दी से तैयार होकर बच्ची से बचकर तेजी में घर से निकल जाया करती थी कि कहीं वह फिर न रोकना चाहे। वह फिर सड़क पर आ गई और अपने मन में आई इस आरम्भिक जीवन की बात भी सोचने लगी।

इस बीच सड़क का माहौल कहीं से भी कुछ बदला नहीं था। इक्का-दुक्का सवारियां जिसमें विशेषतः मोटर कार ही आ जा रही थी। रिक्शा और पैदल बहुत कम। धूप तीखी बनी हुई थी और हवा गुम। सड़क के पिघले कोलतार पर उसके चप्पल के तलबे के निशान उभर रहे थे—पांच पत्तियों वाला कोई फूल बन जाता था। कोलतार पर। वह जानती थी। मुड़कर एक बार देखती। उसे देखकर राधा के मन में एक बेचैनी भर गई और वह इस विडम्बना पर—कोलतार पर अपने तलवों के पांच पत्री-फूल डिजाइन के उभरने पर अधरोए मन से मन ही मन सिर पटकने लगी। यहां से वहां तक सुनसान सड़क थी। डाकबंगला चौराहे पर भयानक सहमा सहमापन।

राधा के पैर रुक गए। और वह सोचने लगी कोई रिक्शा मिले, वह ले ले और घर चली जाए। लेकिन उस लू-धूप में रिक्शे की कोई आशा बेकार थी। वैसे वह अचानक ही बहुत थकान भी अनुभव करने लगी थी। उसे खुद पता नहीं चल पाया, ऐसा क्यों महसूस करने लगी वह। फिर उसे यह भी लगा कि अभी वह इस तरह इस धूप में खड़ी भी कब तक रह सकती है। इसके लिए वह थका-थका डग आगे बढ़ाने लगी और सोचने लगी कि बेकार ही

दफ्तर से छुट्टी ली। इस छुट्टी की आवश्यकता क्या थी। और छुट्टी लेकर किया भी क्या अभी तक?

अपने इस प्रश्न से राधा स्वयं ही बेतरह घिर गई। क्योंकि इसका कोई जवाब उसके पास नहीं था। घर से तो दफ्तर करने ही निकली थी। दफ्तर में पहुंची भी ठीक-ठीक ही थी। बैठकर जरूरी काम निपटाने की बात सोच कर उसने दराज खोलकर कलम निकालनी चाही तो उसके नीचे दबा हुआ लिफाफा उसे दीख गया और उसने उसमें से पत्र निकाल कर फिर पढ़ा जिसमें मद्रास से कृष्ण कुमार ने लिखा था कि वह ठीक-ठाक है। दफ्तर में सभी कुछ उसने जमा लिया है, लेकिन उसका मन हमेशा यहीं लगा रहता है। बच्चों को छोड़कर जाने की चिन्ता बनी रहती है। वैसे तो सभी प्रबन्ध ठीक-ठीक कर आया हूं, फिर भी कब कैसी जरूरत हो, तुम जरा मिलती रहना और उन्हें देखती रहना। वे अकेला न महसूस करें। पत्नी ने भी यही आग्रह किया है, तुम्हें। तुम्हारा कृष्ण।

राधा का पूरा का पूरा मानसिक क्रम यहीं से उचट गया था, सो याद है। चिट्ठी कल की दोपहर वाली डाक से ही आई थी और वह स्वभावतः बहुत भावुक हो गई थी। लौटते हुए में वह उन बच्चों से मिलकर जाना चाहती थी। कल से उसे भी उन बच्चों के बारे में बहुत याद सता रही है। बच्चों को कृष्ण कुमार बहुत प्यार भी तो करता है। ऐसा सोचा तो था लेकिन बावजूद इसके कि तीन चार किलोमीटर दूसरी तरफ से उसका घर पड़ता था, वह देरी हो जाने के बाद भी उधर से ही गई थी। लेकिन दरवाजे तक आकर लौट आई थी।

उसने बाहर से अनुभव किया सभी टी. वी. लगाकर मजे से देख रहे हैं। उसका मन हुआ था फिर भी कि, आ गई है तो मिल ले। लेकिन फिर यह सोचकर टाल गई कि कई दिनों बाद आई है। बच्चों से खाली हाथ मिलना क्या अच्छा लगेगा? और वह लौट गई। पोर्टिको में आकर उसे फिर दुविधा हुई। बगल से कुछ चाकलेट ही लेकर आती हूं। पर्स टटोला तो पैसे उतने नहीं थे और आखिर वह लौट ही गई। उसने लौटते-लौटते सोचा था, यह बात कृष्ण कुमार जान लेगा तो कितना दुखी और नाराज होगा?

लेकिन इस बात का कोई अंदेशा ही नहीं था क्योंकि वह वहां से हजारों किलोमीटर दूर मद्रास में अपनी गृहस्थी नए सिरे से बसाने में व्यस्त है। और जिसमें उसकी पत्नी उसका जबर्दस्त हाथ बंटा रही है। कल को बच्चे भी यहां से चले जाएंगे। घर खाली हो जाएगा। शायद इसे भी किराए पर लगा दे।

वह उन्हीं बातों में व्यस्त देर गए घर पहुंची थी। बड़ा वाला बेटा जगा था। छोटा सो चुका था। रमेश बाबू किताब पढ़ रहे थे। बड़ी बेटी लिख रही थी। राधा के घर में कदम रखते ही सभी जैसे हलचल में हो गए। रमेश बाबू से लेकर बच्चों ने देरी का कारण पूछते हुए उसे गुस्सा दिया। वह चुपचाप रही। जवाब नहीं दिया कुछ।

—आज ज्यादा काम था क्या दफ्तर में? पति ने पूछा।

—हां कुछ ज्यादा काम था। लेकिन उससे भी ज्यादा देरी हुई कि मैं कृष्ण कुमार के घर होकर आ रही हूं।



—क्या हुआ? ठीक-ठाक तो हैं बच्चे?

—शायद हैं? राधा ने कहा और कपड़े बदलने चली गई। रमेश बाबू ने पढ़े जा रहे पृष्ठ में उंगली घुसाकर किताब बंद कर ली और कपड़े बदल कर राधा के वहां लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। तब तक भीतर से बेटी ने पूछा—'खाना तुरंत खाओगी या बाद में मां?' उसका कोई उत्तर उसे नहीं मिला।

तब तक वह वहां आई। पूछा—'सबों ने खा लिया?'

'नहीं, पापा तुम्हारे लिए ठहरे हुए थे। हम लोगों ने खा लिया।'

—'क्यों पापा को क्यों नहीं खिला दिया। एक सौ बार कह दिया है। मुझे तो देर अबेर होती रहती है?' वह झुंझलाई।

—लेकिन मैं दूसरी बात कहता हूं राधा। तुम्हारा स्वास्थ्य इतना गिर गया है। डाक्टर लगातार कह रहे हैं दवा का कोई फायदा नहीं होगा अगर आराम नहीं करोगी। तुम पर तो भूत सवार है। तुम क्यों इतना मरती रहती हो? छुट्टी क्यों नहीं ले लेती? क्यों नहीं कुछ महीने आराम करती हो?'

पति की इस बात पर उसने बहुत मजबूरी से देखा था और इतना ही बोली थी—'मोटी तो हो गई हूं। आप बेकार ही फिक्र कर रहे हैं। मुझे कुछ नहीं होता।'

—'हां, अगर तुम्हारे खून बगैरह की जांच रिपोर्ट भी यही बतलाती तो। लेकिन तुम्हें बचपना छोड़ना चाहिए और कुछ दिन ओवर टाइम बन्द करना चाहिए। क्या होगा ऐसे पैसे लेकर?' उसने इस पर भी एक बार सिर्फ पति को देखा भर था। फिर सिर झुका कर रोटी डालने लगी थी मुंह में। कुछ देर यों ही बीत जाने के बाद उसी ने बात शुरू की थी—'पैसे की कितनी जरूरत है आप नहीं समझते। हर काम ही तो पैसे पर निर्भर है। तब तो हर काम से पहले पैसे को सोचना पड़ता है। यों घर का खर्च बढ़ गया है। कल और भी बढ़ने वाला है। शादी करनी होगी। एक समस्या है कोई? पति चुपचाप सुनते रहे। फिर बोले 'लेकिन जब तुम्हारा

स्वास्थ्य ही चौपट हो जाएगा तो वही रुपये डाक्टर को चढ़ा आने होंगे तो? इससे फायदा।' उसने आधी हंसी आधी खीझ से टोक दिया, 'आप अभी नहीं समझ पाते हैं बातों को।'

खाना खत्म हुआ और सोने गए तो अचानक फिर ख्याल आया कृष्ण कुमार के बच्चों का। रमेश बाबू ने पूछा—'तुमने कहा था शायद ठीक ही हैं? इसका मतलब? वह थोड़ा चुप ही रही थी। फिर बोली थी—'क्योंकि में बाहर से ही लौट आई। बच्चे शायद टी. वी. देख रहे थे। हड़बड़ में खाली हाथ चली गई थी। पर्स में पैसे भी अधिक नहीं थे कि दुबारा कुछ लेकर चली जाती?'

—'तुम भी अद्‌भुत हो। भला बताओ वहां जाकर और बिना मिले चली आई।' पति ने कहा।

बात इतनी ही हुई। सो तो सतह पर। उसके मन में उसके बाद कई बातें चक्कर काटती रहीं। जिसमें प्रमुख बात यह थी कि वह इस बीच जानने लगी थी कि अब उस घर में उसका जाना-आना कृष्ण कुमार को छोड़कर किसी के लिए भी उत्साह या खुशी का कारण नहीं होता। उसकी पत्नी, तीनों बेटे, सभी उसकी उपस्थिति को पहले की तरह सहज भाव में नहीं लेते। बल्कि उसने इस बीच महसूस किया था—कई बार महसूस किया था कि उसके पहुंचने पर वह परिवार अनाचक—जैसे किसी बोझ के नीचे पड़ जाता था। सबके सब अचानक असहज हो जाते। खूब गम्भीर। पत्नी तो, खैर व्यंग्य में बातें करना उनका स्वभाव है, जिसमें प्यार भी बहुत होता था, अब वह भी उसके प्रति सिर्फ व्यंग्य से भर गई है।

एकाध बार व्यवहार में इस बदलाव का जिक्र उसने अपने पति से किया था तो उन्होंने समझाया था—'तुम्हारा भ्रम है। वह परिवार पूरा का पूरा बहुत अच्छा है। तुम्हारी अपनी आशंका है।'

उसने एक दिन कृष्ण कुमार के दफ्तर में अचानक यही बात उससे भी पूछ दी थी। वह इस अप्रत्याशित प्रश्न से क्षण भर स्तब्ध तो हुआ था लेकिन बड़ी बौद्धिकता से उसने कहा था—'देखो राधा, यह समाज, परिवार सब कुछ एक ऐसे हौच पौच हालत में जी रहा है कि अलग से ऐसी आशंकाओं पर सिर खपाना बेवकूफी के अलावा कुछ नहीं। सबकी मानसिकता और संस्कार एक तो होता नहीं। और फिर औरतों में दकियानूसी यों भी बहुत होती है। बातों को सही ढंग से लेने की उन्हें जरूरत नहीं होती अक्सर। इसलिए तुम जैसी पढ़ी-लिखी लड़की के मन में भी ऐसी खुराफात आती रहती है। पानी पीओ एक गिलास।' उसने चपरासी बुलाकर पानी के लिए कहा। लेकिन राधा ने सिर झुकाए तत्काल कहा—

—'मजाक में मत टालो समस्या को। ऐसे में हम दोनों की, हम दोनों के बच्चों की जबर्दस्त हानि हो सकती है। हम अभी क्यों नहीं तय कर लें?'

—'क्या?'

—'कि हम क्या हैं?'

कृष्ण कुमार मुस्कराया। गंभीर हुआ और बोला 'हम दो लोग हैं। और दोस्त।'

—'यह कोई जवाब नहीं हुआ।'

'इसका मतलब तुम्हारा प्रश्न गड़बड़ है। लो पानी पीओ।' उसने मेज पर रखे गए गिलास की ओर इशारा किया और दुबारा मुस्कराया। राधा ने बड़े आज्ञाकारी ढंग से पानी गटक लिया और बोली—'मैं समझ तो सकती ही हूं कृष्ण कुमार। स्त्री हूं। लेकिन अब थोड़ी उलझने होती हैं तुम्हारे घर आते। हालांकि तुम्हारे लिए मेरे यहां, मेरे पति और बच्चों में कोई ऐसा दुराव भाव नहीं है। तुम जितना ही विश्वास मुझ में रखते हो उसके आधार पर कहती हूं।'

कृष्ण कुमार चुप सुनता रहा था, एक क्षण अन्यमनस्क-सा भी हुआ। तब तक उसके आगे फाइलों का अंबार लग गया था और उसे उसमें लग जाना पड़ा था कि दो मिनट रुको। पर राधा उसके बाद दो ही नहीं ठीक साठ मिनट बैठकर लौट आई थी। तब कृष्ण कुमार के घर पर की उसकी वह सपरिवार आत्मीयता से भरी बैठकी, बैठकबाजी बन्द हो गई थी, सो तो नहीं, लेकिन एकदम कम हो गई थी।

यह बात दोनों परिवार के लोग अपनी-अपनी तरह महसूस कर रहे थे और जैसी कि परिस्थिति थी कृष्ण कुमार ही फुर्सत निकालकर उसके घर जाता और बच्चों से बातें करता। उसे सच में अनुभव होता कि वहां के एक-एक के मन उसके आने की खुशी साफ-साफ देखी जाती थी। यह बात राधा, कृष्ण कुमार के चेहरे पर छाई तृप्ति के आभास को पढ़कर जान लेती थी और तृप्त होती थी।

इसी बीच यहां का कृष्ण कुमार का तीन वर्ष का कार्यकाल पूरा हो गया था। उसे बदलकर मद्रास भेज दिया गया था। शहर से उसकी औपचारिक विदाई हो गई थी। वह तत्काल सिर्फ पत्नी को लेकर चला गया था और खुशी की बात थी कि एक प्रोमोशन लेता गया था। जाना ही था।

उसके बाद महीने बीत गए। वर्ष के करीब हो आया तब उसका एक पत्र आया और उसमें भी पत्नी के बहाने अपना आग्रह कि बच्चों को देख आया करें और दरअसल अब समझ में आ रही थी राधा को अपनी विकलता। वह कृष्ण कुमार के इस आग्रह से तिलमिला गई थी। इतने दिन शायद उसे भरोसा था कि हम लोग बच्चों को देखेंगे ही। अब उसका भरोसा जैसे चुक गया। यही बात उसे बहुत अपमानजनक लगी थी। और वह कृष्ण कुमार को साफ-साफ लिखने वाली थी।

वहीं लिखने की तैयारी करने में वह अचानक अधूरे पत्र को छोड़कर उठ गई, फिर बैठ गई और आकस्मिक छुट्टी का आवेदन लिखकर छोड़ती हुई दफ्तर से निकल पड़ी।

धूप में लगातार सड़क पर चलती रही। उसे स्वयं पता नहीं कि क्या होगा। किन्तु वह स्वभाव के विपरीत बहुत धीमे कदमों से सड़क पर चल रही थी और उसके पैर में दर्द होने लगा था। घुटनों से ऊपर सूजन भी आ गई हो तो आश्चर्य नहीं। सड़क पर वह देख तो सकती नहीं थी। फिर भी उसका मन तो बोझिल था ही। पैर के दर्द से वह बेतरह परेशान होने लगी।

रिक्शे का प्रयास अब तक बेकार गया। वह धीरे-धीरे बढ़ने लगी आगे। तब तक पीछे से उसकी एक सहेली रिक्शे से आती दिखी। वह आशा करने लगी कि बिठा लेगी। क्योंकि अकेली थी वह। वह रुकी भी। लेकिन छूटते ही पूछा—'राधा तेरा पर्स देखूं।' उसने दिया, 'क्या बात?' 'जरा लिपस्टिक और आईना तलाश रही हूं। पूरा मेकअप उतर गया है और मुझे बाहर ही बाहर एक मीटिंग में जाना पड़ रहा है।' राधा हंसी—एक भारी उदास हंसी। 'मेरे पर्स में वह सब कहां मिलेगा?' सहेली निराश और बेचैन होकर रिक्शे पर लगभग कूद कर बैठ गई और चली गई। पैरों में तकलीफ के बावजूद राधा उससे कह न सकी कि—मुझे भी बिठालो। उसी तरफ जाना है। उसने न खुद साथ लिया, ना ही राधा ने खुद साथ हो जाना पसन्द किया।

फिर वह जाते-जाते सोचती रही अपने और कृष्ण कुमार के संबंध के बारे में। इतने वर्षों का यह संबंध कहां से क्या है? कैसा है? क्या सचमुच है? वह तो गाड़ी, बंगले और टेलीफोन वाला एक संपन्न-संभ्रान्त अफसर है। जबकि वह स्वयं एक दफ्तर में महज क्लर्क। बचपन की दोस्ती इस फर्क को कैसे मिटा सकती है? ऐसा मान बैठना शायद मेरी ही खुशफहमी थी। दरअसल तो हम दोनों दो समाज, दो वर्गों के लोग हैं।

राधा भीषण अंतर्द्वन्द्व में फंस गई थी।

तब तक एक पेड़ दिखा। नीचे में सत्तूवाली की दूकान खुली थी। कई रिक्शा वाले खा रहे थे। उसे थोड़ी आशा हुई। वह रुक गई। इधर-उधर आंखें घुमाकर देखा। एक रिक्शा वाला हड़बड़ कर बोला—बैठिए इसी रिक्शा पर मेम साहब। हो गया खाना। अभी चलते हैं। राधा की जान में जान आई। लेकिन उसने उसे आराम से खाने के लिए कहा और रिक्शे पर बैठकर उसने आंखें बचाकर अपने पैर देखे। सचमुच बहुत चलने से, थकान से सूज गए थे। तकलीफ बड़ी थी। देखने के बाद जैसे और बढ़ गई।

लेकिन वह इतना चली क्यों पैदल? किसलिए? वह बैठी-बैठी सोचने लगी। याद आया उस पैदल सफर में पैरों की ऐसी ही दुर्गति हो गई थी। कृष्ण कुमार होटल से पानी गरम मंगवाकर तौलिया भिगो कर रात भर यतनपूर्वक खुद अपने हाथों से इन पैरों को सेंकता रहा था। उस तीर्थ यात्रा में ये दोनों पैर उसके पैरों के साथ-साथ चल रहे थे। रिक्शा में बैठी-बैठी वह जैसे भटक गई।

'लेकिन कृष्ण कुमार ने बच्चों को देखने का आग्रह क्यों किया, सो भी महीनों बाद? उसका भरोसा उठ गया मुझसे? कैसा छोटा भरोसा है। मेरा तो नहीं उठा भरोसा?' आत्म संवाद में वह चली जा रही थी।

रिक्शा वाला आया तो वह चली। उसे कुछ अजीब लग रहा था। उसे लग रहा था वह रिक्शे से कहीं नहीं जा रही है। घर नहीं, कृष्ण कुमार के बच्चों से मिलने नहीं, दफ्तर नहीं। वह कहीं नहीं जा रही है। एक नदी के किनारे-किनारे कदम के पेड़ों के सघन वन में इधर से उधर भटक रही है। बहुत दिनों से भटक रही है। परन्तु थी तो वह रिक्शे पर। रिक्शा वाला एक किलोमीटर चला होगा। तब जैसे उसे अचानक ख्याल आया। उसने उसे रोका और पैसे देती हुई उतर गई। फिर लगभग रेंगती हुई पास की गली में घुस गई। अंदर जाकर फटेहाल घर में पहुंची, जहां घोर तकलीफ फैली हुई बोल रही थी। अभागिन-सी स्त्री दो बच्चों के साथ बैठी जैसे अथाह समुद्र पार कर रही थी। पहचानकर रोने लगी। राधा ने धीरज बंधाया और कहा 'घबड़ाओ मत बहन—यह हड़ताल अब एक दो रोज में खत्म होगी। सरकार को मानना पड़ेगा। तुम्हारे पति जेल से छूटेंगे।' वह स्त्री रोने लगी।

राधा ने सान्त्वना दी। बच्चों को प्यार से सहलाया। और स्त्री की हथेली में एक नोट रखना चाहा। उसने समझा तो आपत्ति की—'अभी-अभी तो रमेश भैया आपके भेजे हुए रुपये दे गए हैं और क्यों दे रही हैं दीदी। राधा बड़ी सूक्ष्मता से चौंक पड़ी। लेकिन सामान्य भाव से कहा—'रखो तो, मुझे लगा कि कम हैं। इतने से काम कैसे चलेगा। इसलिए थोड़ा और ले आई हूं। रखो तो। छोटी ही तो हो बहन। लेकिन यह रोना-धोना बिल्कुल नहीं। डरना नहीं है। घबड़ाना भी नहीं है। तुम्हारे पति ने तो हजारों मजदूरी करने वाले किरानी बाबू के लिए हड़ताल की है। वह जेल गए हैं न? यह बुरी बात तो है नहीं। अपने जैसे इतने सारे लोगों के परिवार-बच्चों की हालत सुधारने के लिए जो काम किया जाता है वह हरदम अच्छा होता है। और तुम धीरज और विश्वास रखो सब ठीक-ठीक रहेगा। बच्चों के सामने रोया नहीं करते। मां कहीं रोती है?' उसने थपकी दी।

स्वाभाविक था कि वहां से निकलते ही उसके मन में, रमेश की बात समा गई थी। वे कह रहे थे कि उनके कुछ मित्र जो अन्य विभागों में काम कर रहे हैं, वे हड़ताल पर हैं। कई हफ्तों से। अभी तक कोई समझौता नहीं हो पा रहा है।'

वहां से भटकती हुई बढ़ गई और खूब तेज चलने लगी। अभी थोड़ी ही देर पहले की मंदी अब फुर्ती में बदली हुई लग रही थी और सड़क पर वह झटक कर चल रही थी। कुछ ही दूर आगे सड़क के बाएं किनारे मामूली छोटे शामियाने के नीचे कुछ हड़ताली बैठे थे और वहीं बैठे थे कई लोगों के साथ रमेश। जाती हुई राधा अकस्मात शामियाने के पास रुकी। फिर बैठ गई। उसकी आधी देह धूप में और आधी शामियाने की छाया में थी। □

सहायक केन्द्र निदेशक, आकाशवाणी,
दिल्ली-110001

आजकल का चंदा

एक प्रति 3 रुपए; वार्षिक 30 रुपए; द्विवार्षिक 54 रुपए तथा त्रिवार्षिक 72 रुपए मात्र।

छात्रों, अध्यापकों और पुस्तकालयों के लिए चन्दें में 10 प्रतिशत की छूट। इसके लिए प्रमाण-पत्र भेजना आवश्यक है।

चन्दे एवं विज्ञापन तथा पत्रिका न मिलने की शिकायत भेजने का पता — व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक 'आजकल' (हिन्दी), पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001, दूरभाष : 387069

चीनी भाषा

कृष्णकिंकर सिंह

संसार के सबसे अधिक जनसंख्या वाले महान चीन देश में एक ही भाषा और एक ही लिपि का व्यवहार होता है। चीन ने भाषा और लिपि की इस एकता को हजारों वर्षों से स्थिर रखा है। प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने, जो स्वयं चीन में प्रोफेसर रह चुके हैं, चीनी भाषा की विशेषताओं का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है—सं.

किसी राष्ट्र के निर्माण करने में भाषा का प्रमुख हाथ रहता है। अगर एक देश के सभी रहने वाले एक ही भाषा बोलते, लिखते और पढ़ते हैं तो उनका आपस में संगठित हो जाना आसान हो जाता है। एक भाषा बोलने वालों के बीच जो स्वाभाविक आत्मीयता होती है वह भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के बीच नहीं पाई जाती। हमारे देश में प्रान्तीयता का जोश जो बहुत से आदमियों में पाया जाता है उसका एक प्रमुख कारण यहां भिन्न-भिन्न भाषाओं का होना है। हमारे असंगठित रहने का भी यह एक कारण है। हमारे देश में अभी राष्ट्रीय सरकार बनी है। कुछ समय के बाद ही यह देश स्वतंत्र हो जाएगा और तब देश के काबार, देश की भाषाओं में ही होंगे। पर हमारे यहां अब तक भाषा का प्रश्न हल नहीं हो सका है। हम जिस दिशा में प्रयोग कर रहे हैं चीन में उस प्रकार का प्रयोग हो चुका है। इसलिए हम चीन की भाषा सम्बन्धी बातों से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

चीन भारत का पड़ोसी देश है। इन दो देशों की हालत बहुत से मामलों में लगभग एक समान है। पर जहां तक भाषा का प्रश्न है दोनों के बीच जमीन आसमान का अन्तर है। चीनी भाषा भारतीय-चीनी-कुल* (इंडो चाइनीज फेमिली) की भाषाओं में से सबसे बड़ी और समृद्ध भाषा है। संसार में अंग्रेजी के बाद इसी भाषा के बोलने वालों की संख्या अधिक है। यह भाषा संसार के दूसरे कुलों की भाषा से प्रमुख्यतया दो कारणों से भिन्न है। प्रथम तो यह भाषा एकाक्षरी (मोनोसिलेबिक) है और दूसरे इस भाषा के शब्दों में उच्चारण में स्वर (टोन) का विकास हुआ है। और भी दूसरे कई कारण हैं जिनसे यह भाषा संसार की अन्य भाषाओं से भिन्न है पर भाषा-शास्त्री उपर्युक्त दो कारणों को ही प्रधान मानते हैं। यहां एकाक्षरी और स्वर के सम्बन्ध में जरा साफ-साफ समझ लेना अच्छा होगा।

चीनी भाषा में वर्णमाला नहीं है। यह चित्रात्मक लिपि में लिखी जाती है और इसका एक-एक संकेत या अक्षर एक-एक शब्द होता है जो किसी चीज या गुण या भाव का द्योतक होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा के आदमी शब्द को लीजिए। इसे लिखने के लिए हिन्दी में आ, द और म अक्षर तथा ई की मात्रा की आवश्यकता होती है। पर चीनी भाषा में आदमी शब्द के लिए एक संकेत निश्चित है और उसका उच्चारण भी निश्चित है। उस शब्द के न तो हिज्जे हो सकते हैं और न उस संकेत को देखकर कोई उसका उच्चारण ही कर सकता है जब तक कि उसे उसका उच्चारण न बता दिया जाए। कोई भी व्यक्ति हिन्दी भाषा की वर्णमाला को अच्छी तरह सीख कर हिन्दी की कोई भी पुस्तक पढ़ सकता है, भले ही वह उस पुस्तक में लिखी बातों का अर्थ न समझे। पर चीनी भाषा में यह बात नहीं है। चूंकि हर शब्द का संकेत निश्चित है और उसका उच्चारण भी निश्चित है, इसलिए चीनी भाषा सीखने वालों को हर शब्द का संकेत और उच्चारण जानना पड़ेगा। चीनी भाषा के संकेत और उच्चारणों में कोई संबंध नहीं है जैसा कि हिन्दी वर्णमाला और हिन्दी शब्दों के उच्चारण के बीच संबंध है। चीनी भाषा की कोई पुस्तक कोई व्यक्ति तभी पूरा-पूरा पढ़ सकता है जब उसे पुस्तक में लिखित सभी संकेतों का उच्चारण सहित ज्ञान हो। चूंकि यह एकाक्षरी भाषा है इसलिए शब्दों के उच्चारण या तो केवल स्वर हैं जैसे ई, आ, इ आदि या आदय व्यंजन और स्वर एक साथ हैं। जैसे चु, मु+ आदि। बहुत से शब्द हैं जिनके अन्त में न् और ङ्, आते हैं जैसे वाङ्, चन्, सन् आदि शब्दों में। पर इन शब्दों के न् और ङ् भी वास्तव में स्वर ही हैं। चीनी भाषा के शब्दों के उच्चारण व्यञ्जनान्त नहीं होते। इस भाषा के हर शब्द का उच्चारण एकाक्षरी है इसलिए यह भाषा एकाक्षरी कहलाती है।

चीनी भाषा का जो सबसे बड़ा शब्दकोष है उसमें लगभग पचास हजार संकेतों (शब्दों) की चर्चा है। पर इन पचास हजार शब्दों के लिए लगभग कुल चार सौ ध्वनियां हैं यानी छन्, वाङ्, च्याङ्, इ, सु आदि विभिन्न चार सौ उच्चारण हैं। इस प्रकार अगर मोटा हिसाब लगाया जाए तो एक सौ से भी अधिक विभिन्न

---

* इस कुल को टिबेटो चाइनीज या सिनिटिक भी कहते हैं।

\+ 'चु' में च्+उ है। यह 'च्' ही आद्य व्यंजन है 'उ' स्वर है। पर चीनी भाषा में 'चु' के लिए एक संकेत है जिसमें 'च्' के लिए अलग और 'उ' के लिए अलग कुछ नहीं है। उस संकेत का उच्चारण 'चु' है।

संकेतों के लिए एक ही उच्चारण हुआ। उदाहरण के लिए एक संकेत को लीजिए जिसका उच्चारण मु है और हर संकेत का उच्चारण मु होते हुए भी प्रत्येक का अर्थ भिन्न है। पर बात यहीं समाप्त नहीं होती। इसके आगे स्वर का बखेड़ा आता है और चीनी भाषा के शब्दों के उच्चारण में स्वर का विकास ही इस भाषा की एक प्रमुख खूबी है। स्वर का वास्तविक भेद जितना मुंह से कहकर बता देना आसान है उतना ही लिखकर समझाना कठिन है। चीन की राष्ट्रीय भाषा पेकिङ् की बोली में चार स्वर हैं जिनके नाम हैं (1) वाङ् फिङ् षङ् यानी उपरिवर्ती स्वर (2) श्या फिङ् षङ् अधोवर्ती स्वर (3) षाङ् षङ् यानी उत्थायमान स्वर और (4) छू षङ् यानी लुप्तमान स्वर। यह तो राष्ट्रीय भाषा की बात हुई। चीनी भाषा की बोलियों में और भी अधिक स्वर हैं। दक्षिणी मन्डारिन बोली में पांच स्वर हैं, केंटन की बोली में नौ स्वर हैं। यहां तो राष्ट्रीय भाषा की ही केवल चर्चा की जा रही है जिसमें केवल चार स्वर होते हैं। इसका अर्थ यह है कि एक उच्चारण चार प्रकार से बोले जा सकते हैं और हर स्वर में अर्थ भिन्न होगा। उदाहरण के लिए चुङ् उच्चारण को लीजिए। मान लीजिए कि चुङ् उच्चारण के अन्दर 75 भिन्न-भिन्न संकेत (अक्षर) हैं। इन 75 भिन्न-भिन्न संकेतों का चुङ् उच्चारण करते समय यह देखना पड़ता है कि अमुक संकेत चुङ् उच्चारण के किस स्वर में पड़ता है। अमुक संकेत का उच्चारण उसके स्वर के साथ करने से ही ठीक-ठीक भाव व्यक्त हो सकता है अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो जाता है क्योंकि स्वर बदलने से अर्थ भी बदल जाता है। उदाहरण के लिए निम्न शब्दों को देखिए: 1. 'भाइ' तृतीय स्वर में अर्थ 'खरीदना'; भाइ चतुर्थ स्वर में अर्थ 'बेचना', 2. 'सुइ' द्वितीय स्वर में अर्थ 'कौन'; सुइ तृतीय स्वर में अर्थ 'पानी', 3. 'यन् द्वितीय स्वर में अर्थ 'नमक'; यन् प्रथम स्वर में अर्थ 'तम्बाकू'

पर इन शब्दों के संकेत भिन्न-भिन्न हैं। चीनी भाषा जानने वाला कोई भी आदमी उपर्युक्त तीन उच्चारणों भाइ, सुइ, यन् के संकेतों को देखकर उनका अर्थ समझ लेता है। पर बोलने में अगर स्वर सहित न बोला जाय तो ठीक उलटा अर्थ समझा जा सकता है। इसलिए चीनी भाषा के अन्दर जितने शब्द हैं वे इन चार स्वरों में से किसी न किसी स्वर के अन्दर आते हैं। पर चूंकि उच्चारण की संख्या कुल चार सौ ही है और एक उच्चारण में चार स्वर होते हैं इसलिए एक उच्चारण के स्वर के अन्दर भी कितने ही शब्द आते हैं जिनके अर्थ भिन्न होते हैं। इसलिए बातचीत में स्वर सहित सही उच्चारण से भी काम नहीं चलता, बल्कि ठीक-ठीक अर्थ समझने के लिए प्रसंग पर बहुत निर्भर रहना पड़ता है। बातचीत के ठीक अर्थ समझने के लिए तो हर भाषा में थोड़ा बहुत प्रसंग पर निर्भर रहना पड़ता है। यहां एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जब चीनी लोग बात करते हैं तो सभी शब्दों को एक स्वर के साथ नहीं बोलते बल्कि प्रत्येक वाक्य में जो शब्द प्रधान होता है उसे ही ठीक स्वर से बोलते हैं बाकी शब्द तो एक ही स्वर में बोल जाते हैं। उदाहरण के लिए क्या वह आया इस वाक्य को लीजिए। इसमें आया प्रधान शब्द है। इसलिए चीनी लोग इस शब्द को सही स्वर के साथ बोलेंगे। बाकी शब्द एक ही स्वर में बोल जाएंगे यद्यपि उन शब्दों के स्वर भिन्न-भिन्न हैं। चीनी में यह वाक्य यों होगा—'था लाइ ला मइ यु' इसमें लाइ का अर्थ आना है और वही सही स्वर यानी द्वितीय स्वर में बोला जाएगा; बाकी के शब्द था, ला, मइ, यू यद्यपि क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्वर के हैं पर एक ही स्वर में बोल दिए जाएंगे।

ऊपर कहा गया है कि चीनी भाषा में वर्णमाला नहीं है। इसका एक-एक अक्षर एक-एक शब्द है। इसकी लिपि चित्रात्मक है। प्राचीन काल में मिश्र के लोग चित्रात्मक लिपि व्यवहार करते थे। पर आज एकमात्र चीनी भाषा है जो चित्रात्मक लिपि में लिखी जाती है। इस प्रकार चीनी भाषा चित्रात्मक संकेत लिपि के उच्चतम विकास का प्रतिनिधित्व करती है। चूंकि यह चित्रात्मक भाषा है इस लिए भाषा के शब्दों में व्याकरण-जन्य परिवर्तन नहीं होते। वचन, लिंग, पुरुष, वाच्य, क्रियार्थक भेद, काल आदि को लेकर शब्दों में कोई परिवर्तन नहीं आता। लेकिन इन परिवर्तनों के अभाव में अर्थ में कोई गड़बड़ी नहीं होती। इसका अर्थ यह नहीं कि चीनी भाषा में व्याकरण नहीं है। चूंकि चीनी भाषा अन्य भाषाओं से एकदम भिन्न है इसलिए इसका व्याकरण भी अन्य भाषाओं के व्याकरणों से भिन्न है। हम लोगों की भाषा में जिस प्रकार का व्याकरण है वैसा व्याकरण चीनी भाषा में नहीं है। भाषा की बनावट को देखें तो जान पड़ेगा कि शब्दों में बिना परिवर्तन लाए ही बोल-चाल की भाषा कितने सूक्ष्म और ठीक-ठीक अर्थों को भी अलग-अलग प्रकाश करती है। इसके लिए चीनी भाषा में प्रधानतः दो तरीके व्याहृत होते हैं। पहला तो वाक्य में, शब्दों के रखने की व्यवस्था। उदाहरण के लिए—क्रिया के पहले कर्त्ता रखा जाता है और क्रिया के बाद कर्म और संज्ञा के पहले विशेषण आदि। दूसरा कुछ खास शब्द हैं जो सहायक क्रिया और Particles** (उपसर्ग) के समान व्यवहार में आते हैं जो अलग-अलग शब्दों तथा वाक्यों में भी विभिन्न अर्थ पैदा कर देते हैं। इस प्रकार चीनी व्याकरण है—चीनी भाषा के स्वरूप का ज्ञान और उन सहायक शब्दों और उनके व्यवहार का ज्ञान जो वाक्य में आकर अर्थ को बदल देते हैं। यह चीनी भाषा इतनी चलती और व्यावहारिक है कि व्याकरण की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है। भाषा एकाक्षरी होने से इसमें स्वराघात नहीं है। अंग्रेजी में जैसे एक शब्द में कई अक्षर और कई स्वराघात होते हैं और जिनके कारण उच्चारण में बड़ी कठिनाई होती है वैसी हालत चीनी भाषा में नहीं है। यह एक विशुद्ध भाषा है जिसमें विदेशी भाषाओं के शब्द एक तरह से लिए नहीं गए है।

यह भाषा शायद उतनी ही प्राचीन है जितना कि चीनी जाति। यद्यपि इस भाषा का प्राचीन नमूना हड्डियों पर खुदे हुए लेख हैं जो हुनान् प्रान्त में पाए गए हैं और जिसका समय 1400 ई. पू. से पहले का नहीं माना जाता है पर ई. पू. की छठी शती में चीनी भाषा में एक बृहत साहित्य का निर्माण हो चुका था। तब से आज तक इस भाषा का अधिक से अधिक विकास होता गया है।

यद्यपि इसके शब्दों के उच्चारण तथा इसकी चित्रात्मक लिपि में परिवर्तन होते रहे हैं पर भाषा की शैली, वाक्य-विन्यास आदि

** उदाहरण से यह ठीक समझा जा सकता है जैसे एक किताब इसके लिए चीनी में इ पन् सु (किताब की एक प्रति) है। यहां इ का अर्थ एक सु का अर्थ किताब है। पन् प्रति के अर्थ में किताब के पहले Particle के समान आया है। केवल इ सु कहना गलत होगा। इसी प्रकार इ चाङ च (एक तख्ता कागज) आदि।

प्राचीन काल से अब तक बहुत कुछ एक समान ही रहे हैं। इसलिए आज का भी विद्यार्थी प्राचीन पुस्तकों को पढ़ कर समझा सकता है। शायद चीनी भाषा ही संसार में एकमात्र ऐसी भाषा है जो धारावाहिक रूप से प्राचीन काल से आज तक जीवित रूप में वर्तमान है और जिसे लोग प्रतिदिन के काम में व्यवहार करते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह भाषा की आधारभूत बातें हैं। यहां चीनी भाषा की व्यापकता के सम्बन्ध में कुछ जान लेना अच्छा होगा। भारतीय पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि भारतवर्ष से भी अधिक क्षेत्रफल और जनसंख्या वाले विस्तृत देश चीन में एक ही भाषा है जिसे लोग एक ही लिपि में लिखते हैं जब कि हमारे यहां हिन्दी, बंगला, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि कितनी ही प्रधान-प्रधान भाषाएं हैं जो भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखी जाती हैं। चीन में उत्तर स्थित मंचूरिया के लोग एकदम से दक्षिण स्थित यूनान के लोगों से एक ही भाषा और एक ही लिपि में पत्र-व्यवहार करते हैं। लिखित भाषा में केवल थोड़ा-सा प्रादेशिक अन्तर आ जाता है जैसा कि बिहार, मध्यप्रान्त, यू. पी., पंजाब आदि के हिन्दी लेखकों की हिन्दी में थोड़ा बहुत स्थानीय पुट आ जाता है। प्रश्न उठता है कि चीन जैसे विशाल देश में एक ही भाषा और एक ही लिपि क्यों कर रह सकी। इसके दो प्रधान कारण हैं। प्रथम तो यह कि सम्पूर्ण चीन आज से लगभग दो हजार वर्षों से भी अधिक समय से एक केन्द्रीय शासन के अधीन रहा है। वहां की राजकीय परीक्षा-प्रणाली भी लगभग इतनी ही पुरानी है। सरकारी नौकरी के लिए लोगों को राजकीय-परीक्षा में बैठना ही पड़ता था और आज भी बैठना पड़ता है। सरकारी परीक्षा एक ही भाषा और एक ही लिपि में ली जाती थी। इसलिए सम्पूर्ण चीन के लोग एक भाषा और एक लिपि अपना सके। दूसरा कारण यह है कि चीन में छापेखाने का आविष्कार बहुत पहले हुआ इसलिए छपी पुस्तकों का वितरण सम्पूर्ण देश में हुआ और इसने एक भाषा और एक लिपि बनाए रखने में बड़ी मदद पहुंचाई। पर चीन में लिखित भाषा एक होते हुए भी बोल-चाल की भाषा में बड़ा फर्क है। एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त के लोगों से लिख कर तो बातचीत कर सकते हैं पर बोल कर नहीं। इसका कारण यह है कि भाषा के शब्दों के उच्चारण में बड़ी विभिन्नता आ जाती है। चीन के सभी प्रान्तों के लोग चीनी भाषा के शब्दों को एक ही लिपि में लिखते हैं, प्रादेशिक अन्तर से शब्दों के अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता है पर उच्चारण में एकदम अन्तर आ जाता है। इस कारण एक ही भाषा दो प्रान्तों के लोग जब बोलते हैं तो एक-दूसरे को नहीं समझ सकते। चीन के प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डा. लि फङ क्वइ के अनुसार चीनी भाषा की बोलियां प्रधानतः आठ समूहों में विभक्त हैं तथा कुछ और छोटे-छोटे समूह हैं। इन प्रधान आठ समूहों के नाम हैं—उत्तरी मन्डारिन, पूर्वी मंडारिन, दक्षिण-पश्चिम मंडारिन, ब्रु कान; हक्का, मिन्, केनटोनीज और श्याङ्। इनमें मंडारिन का क्षेत्रफल सबसे अधिक है। इसमें लगभग पूरा उत्तरी चीन, पश्चिमी चीन, दक्षिण-पश्चिम चीन और चाङ् टिज काठे के भी कुछ भाग आ जाते हैं। देश के भीतरी भागों में बोलियों में उतना अन्तर नहीं है जितना तटवर्ती प्रान्तों में। इन समूहों में कुछ तो एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं और उनके बोलने वाले आपस में एक-दूसरे को बहुत दूर तक समझ लेते हैं, पर केनटोनीज, फुकऐनिज, मिन् समूह की और हक्का बोलियां एक-दूसरे से एकदम भिन्न हैं और केवल उन्हीं बोलियों के बोलने वाले ही उन्हें समझते हैं। ये बोलियां तटवर्ती प्रान्तों की हैं। उपर्युक्त आठ बोली समूहों में से प्रत्येक में भी कई-कई भाग हैं पर वे आपस में एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लेते हैं। इस प्रकार बोल-चाल की भाषा का एक न होना अन्तःप्रान्तीय सम्बन्ध के लिए बड़ा ही घातक था। अतः प्रजातंत्र की स्थापना के बाद सरकार ने एक कमेटी बिठाई और उसने चीनी उच्चारण की एक वर्णमाला तैयार की और पेकिङ् शहर तथा उसके आसपास बोली जाने वाली बोली के उच्चारण को ही राष्ट्रीय उच्चारण माना। इस प्रकार अन्तःप्रान्तीय सम्बन्ध के लिए पेकिङ् बोली का उच्चारण सीखना सब के लिए आवश्यक हो गया। सरकार ने शिक्षा के माध्यम के लिए भी उसी उच्चारण को स्वीकार किया और अब स्कूलों तथा कालेजों में इसी उच्चारण द्वारा शिक्षा दी जाती है। अन्तःप्रान्तीय सम्बन्ध के लिए अब बोल-चाल की भाषा का भी एक स्टैंडर्ड हो गया। पर उच्चारण सीख कर भी सही-सही उच्चारण करना आसान काम नहीं है। इसलिए पेकिङ् की बोली का उच्चारण सीखे हुए लोग भी जब चीनी भाषा बोलते हैं तो वह शुद्ध पेकिङ् बोली नहीं हो जाती है उसमें उनकी अपनी बोली का पुट आ ही जाता है, पर पेकिङ् की बोली के लगभग पास की जरूर हो जाती है।

हर देश में लिखित भाषा और बोल-चाल की भाषा में सदा अन्तर पाया जाता है। चीनी भाषा इसका अपवाद नहीं है। प्राचीन समय की चीनी भाषा का लिखित रूप हम आज जान सकते हैं पर प्राचीन बोलचाल की भाषा के जानने का कोई जरिया नहीं रह गया है। सन् 1917 ई. की चीन की साहित्य-क्रांति सबसे प्रधान घटना है—भाषा क्षेत्र में हुआ आमूल परिवर्तन। इसके पहले चीन का साहित्य उस भाषा में लिखा जाता था जो सैकड़ों वर्षों से लगभग एक रूप में ही चली आने के कारण नाना बंधनों से बंध कर जटिल हो गई थी और उसमें लिखा हुआ साहित्य चन्द विद्वानों की ही चीज होता था। प्रजातंत्र की स्थापना के बाद डा. हुश और मिस्टर चेन तु षिउ ने सन् 1917 में आवाज उठाई कि गणतंत्र से फायदा ही क्या, अगर वह प्राचीन बंधनों को तोड़ कर सब के लिए शिक्षा सुलभ न कर सके, ताकि साधारण किसान भी कह सके कि शासन-प्रबन्ध किस प्रकार का होना चाहिए। पर शिक्षा सुलभ तभी हो सकती थी, जब प्राचीन जटिल भाषा के स्थान पर सब की समझ में आने वाली सरल बोल-चाल की भाषा का प्रवेश साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में हो। इन दो सज्जनों ने बोल-चाल की भाषा को साहित्य में स्थान देने का आन्दोलन उठाया, पर पुराने ढंग के विद्वानों ने बोल-चाल की भाषा को रिक्शा खींचने वालों और कुलियों की भाषा कह कर इस आन्दोलन का काफी विरोध किया। बोल-चाल की भाषा को साहित्य में स्थान देने की आवाज समय की पुकार थी, इसलिए आन्दोलन चल निकला और साहित्य-क्षेत्र में उसका सिक्का जम गया। इस बोल-चाल की भाषा को चीनी में पै हवा [पै =उज्ज्वल, साफ इसलिए सरल; हवा =सरल बोली] कहते हैं। आज के

अधिकांश आधुनिक लेखक पै हवा में ही अपनी रचना करते हैं। पै हवा के साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश के पहले जो पुरानी भाषा थी वह वन् यन् [साहित्यिक भाषा] कहलाती थी। यहां पै हवा और वन् यन् के भेद जान लेना ठीक होगा। वन् यन् सैकड़ों वर्षों से साहित्य में व्यवहृत होने के कारण बहुत मंज गई है और रूढ़ भी हो गई है तथा उसमें थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहा जाता है। शब्दों की व्यञ्जना-शक्ति में बहुत विकास हुआ है और अक्सर एक अर्थ के लिए एक ही व्यवहृत होता है। पर वह बंध कर इतनी रूढ़ हो गई है कि जन साधारण के लिए बोध-गम्य नहीं रह गई है। उसमें जन-साधारण में प्रचलित शब्द नहीं आते। उदाहरण के लिए मैं शब्द को लीजिए। चीनी भाषा में बोल-चाल में इसके लिए वो व्यवहृत होता है पर वन् यन् में वु या यू आते हैं जो आम व्यवहार में नहीं आते। इसके विपरीत पै हवा जन साधारण की बोली है और वह सब के लिए बोध-गम्य है। इसमें जन साधारण में प्रचलित शब्द आते हैं और शैली भी सरल तथा सब के समझने योग्य होती है। इसमें एक अर्थ के लिए एक शब्द ही नहीं आता बल्कि दो या अधिक शब्द आते हैं। चूंकि यह बोल-चाल की भाषा है इसलिए बोलने में एक अर्थ के लिए दो शब्द या अधिक इसलिए रखे जाते हैं कि समझने में भ्रान्ति न हो। उदाहरण के लिए कपड़ा शब्द को लीजिए। कपड़ा शब्द के लिए चीनी में इ तथा फु दो शब्द हैं; पर बोल-चोल में इ फु दोनों एक साथ कपड़े के अर्थ में व्यवहृत होते हैं। आज का नया साहित्य अक्सर पै हवा में ही लिखा है; पर वन् यन् का व्यवहार छूटा नहीं है। चूंकि थोड़े शब्दों में अधिक बातें कही जा सकती हैं, इसलिए समाचार पत्र, गंभीर लेख आदि वन् यन् में ही लिखे जाते हैं। यद्यपि पै हवा धीरे-धीरे अपना पंजा इन क्षेत्रों में गड़ा रही है पर आज के, वन् यन् में पै हवा भी घुल मिल गई है। प्रजातंत्र की स्थापना के बाद चीन की सरकार ने मंडारिन बोली को ही चीन की राष्ट्र भाषा मान लिया था, पर मंडारिन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और उसमें कितनी ही उप-बोलियां हैं। मंडारिन बोली भारतवर्ष की ठीक हिन्दुस्तानी भाषा के समान है। जिस प्रकार कहा जाता है कि उत्तर भारत की बोली हिन्दुस्तानी है पर वह उत्तर भारत के किसी खास जगह की नहीं है। इस प्रकार मंडारिन को राष्ट्रभाषा मान लेने पर भाषा का एक स्टैंडर्ड नहीं बन सका जिस प्रकार कि हिन्दुस्तानी का कोई स्टैन्डर्ड नहीं बन सकता। इसलिए लगभग सन् 1926 ई. में राष्ट्रीय सरकार ने मंडारिन क्षेत्र की पेकिङ् बोली यानी हृ-पे प्रान्त की राजधानी पेकि के आस-पास की बोली को ही राष्ट्र-भाषा [क्वो यू] मान ली। इसे हिन्दी की खड़ी बोली मेरठ और दिल्ली के आस-पास की बोली के समान समझिए।

ऊपर कहा गया है कि चीनी भाषा एकाक्षरी है और इसका एक-एक अक्षर, एक-एक शब्द का संकेत है अतः प्रश्न पूछा जा सकता है कि आज जो नई-नई चीजों या भावों को व्यक्त करने के लिए विदेशी भाषाओं में नए-नए शब्द बन रहे हैं क्या उन शब्दों के लिए चीनी भाषा में नए संकेत बनते हैं? और चूंकि जब चीनी भाषा में वर्णमाला नहीं है तो विदेशी व्यक्ति-वाचक शब्दों के लिखने का क्या तरीका है? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर बड़ा मनोरंजक है। संकेत नहीं बनते हैं। पश्चिमी भाषाओं में प्रतिवर्ष कितने ही नए शब्द बनते हैं और लोगों को वे नई-नई चीजों या भावों के लिए नए-नए शब्द सीखने पड़ते हैं। पर चीनी भाषा में यह बात नहीं है। पुराने शब्दों के मेल से ही नई-नई चीजों और भावों को व्यक्त किया जाता है, नए संकेत नहीं बनाने पड़ते। चीनी भाषा का एक अक्षर स्वतंत्र है पर उन अक्षरों को एक-दूसरे के साथ मिला कर अगणित संयुक्त शब्द बना सकते हैं जो विभिन्न अर्थ के बोधक होते हैं। उदाहरण के लिए कुछ विदेशी शब्दों के चीनी रूपान्तर देखिए:

अंग्रेजी शब्द	चीनी शब्द	अर्थ
रिपब्लिक	मिन् क्वो	मिन्=जनता; क्वो=देश—जनता का देश।
युनिवर्सिटी	ता स्वो	ता=बड़ा; स्वो=स्कूल—बड़ा स्कूल।
रेलवे	थिए लु	थिए=लोहा; लु=सड़क—लोहे की सड़क
स्टेशन	हवो छ चान्	हवो=अग्नि; छ=गाड़ी; चान्=ठहराव—अग्नि गाड़ी ठहराव।
ट्रेन	हवो छ	हवो=अग्नि, छ=गाड़ी—अग्नि गाड़ी।
फाउनटेनपेन	च लाइ स्वइ पि	च=स्वयं, लाइ=आना; स्वइ=पानी, पि=कलम-स्वतः पानी आने वाली कलम।
टेलीफोन	तिएन हवा	तिएन=बिजली; हवा=बोली—बिजली की बोली।
कम्युनिज्म	कुङ् छान चु इ	कुङ्= सम्मिलित, छान=सम्पत्ति; चु इ=सिद्धान्त—धन का सिद्धान्त।

उपर्युक्त अंग्रेजी शब्द चीनी भाषा के लिए एकदम नए थे। पर उन्हें चीनी भाषा में व्यक्त करने के लिए नए संकेतों का निर्माण नहीं हुआ पहले के ही प्रचलित शब्दों को मिलाकर उनके चीनी शब्द बनाए गए। शब्दों की व्युत्पत्ति की दृष्टि से चीनी शब्द अधिक स्पष्ट और तर्क-संगत जान पड़ते हैं। कोई भी अंग्रेज जो टेलीफोन के अर्थ को नहीं जानता है या जिसने टेलीफोन नहीं देखा है उसे टेलीफोन कहने मात्र से कुछ समझ में नहीं आ सकता। पर इसके लिए चीनी शब्द तिएन हवा में तिएन का अर्थ और हवा का अर्थ एक अनपढ़ चीनी भी समझ सकता है और इस प्रकार वह अनपढ़ तिएन हवा कहने से टेलीफोन का पूरा भान न करते हुए भी इतना तो समझ ही सकता है कि यह शब्द बिजली की बोली से संबंध रखता है। विदेशी व्यक्ति-वाचक शब्द चीनी भाषा में दो प्रकार से व्यक्त किए जाते हैं। एक तो शब्दों के अर्थ के पर्यायवाची चीनी शब्दों द्वारा यानी अनुवाद द्वारा। इसके लिए मेरे नाम का उदाहरण लीजिए। मेरे नाम कृष्ण किंकर सिंह का चीनी अनुवाद श थिएन फु है। यानी मेरा नाम चीनी में श थिएन फु है—श=सिंह; थिएन=ईश्वर=कृष्ण; फु=नौकर= किंकर। दूसरा तरीका है अनुलिपि (Transliteration) का यानी नामों के उच्चारण से मिलते-जुलते हुए शब्द रखे जाते हैं। जैसे भारतीय भिक्षु कुमार जीव का नाम चीनी में च्यु मो लो श हुआ। गांधी जी कान ति हो गए। चर्चिल साहब छयु चि अर, रूजवेल्ट लो सि फु के

(शेष पृष्ठ 45 पर)

रंग और रेखाओं का सार्थवाह

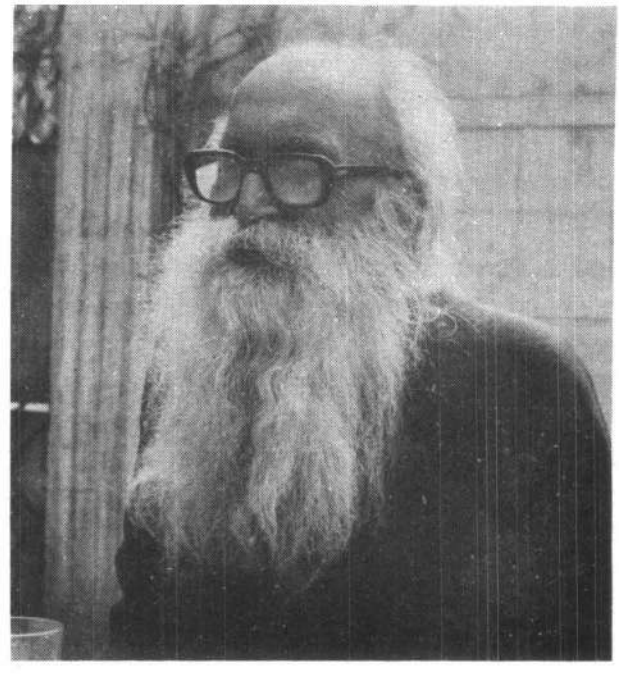
ललित शुक्ल

पूरा जंगल खामोशी की चादर में लिपटा है। भयानक सन्नाटा है। निष्फल दृष्टि कुछ पाने की तलाश में आगे बढ़ती तो है पर चुपचाप वापस लौट आती है। खामोशी को चीरती हुई एक दुबली-पतली नदी जंगल की छाती पर सरक गई है। कोई शौकीन घर-दुआर से बेखबर नदी किनारे पत्थर की शिला पर बैठा बांसुरी बजा रहा है। सुने या कोई न सुने। बांसुरी वादक को चिन्ता नहीं है। जंगल चुप भले हो पर बहरा नहीं है। आसमान की असंख्य आंखें इस स्वरलीला पर मुग्ध हैं। यह तार कभी न टूटे। बियावान ऐसे ही रहे। जलधारा और स्वरधारा का युगपत् प्रवाह गा रहा है, गाता जा रहा है। बांसुरी वादक बेसुध है। उसकी चेतना समाधिस्थ है। यह न सोचिए कि अभी यह सिलसिला खत्म हो जाएगा।

इस बांसुरी में अनंत स्वर-कोष हैं। यह खजाना कभी खाली होने वाला नहीं है। अनेक गीत हैं इसमें। आपाधापी में किसके पास समय है जो सुने कि कोई मस्तमौला अपनी बांसुरी के स्वर से नदी की गति का तालमेल ठीक कर रहा है। यह दुनिया ही दूसरी है। यहां बड़ी भागमभाग है। सभी भाग रहे हैं। दौड़ निरंतर जारी है। क्यों दौड़ रहे हैं आप? इसलिए कि सभी ऐसा कर रहे हैं। दौड़ता हुआ व्यक्ति बहुत कम आकृष्ट कर पाता है किसी को। स्वर की यात्रा तो मुग्ध करती है। सहस्रफण भी एक बार मस्ती में थिरक उठता है।

देवेन्द्र सत्यार्थी के रचनाकार को देखता हूं तो पता नहीं क्यों वह बांसुरी वादक याद आता है। मस्ती में फकीरी की डगर जा रहा है। यह अदा लापरवाही की है। कला और साहित्य की यह पूजा मनःपूत है।

ठीक-ठीक तारीख याद नहीं है। सन् 1965 की दिल्ली का चेहरा मेरे लिए नया-नया था। कॉफी हाउस में समय की छाती पर मूंग दलना, महानगर की सड़कों का मिजाज पहचानना, दीवारों पर चिपके पोस्टरों का मजमून पढ़ना, रास्ता भूल जाने पर अपने मुहल्ले का अता-पता पूछना, काफी काम थे उस वक्त। उन्हीं दिनों कभी कॉफी हाउस में ही देवेन्द्र सत्यार्थी से भेंट या यूं कहिए कि नन्हीं-सी मुलाकात हुई थी मेरी। पहले साक्षात्कार में ही लगा था कि परस्परता में कहीं वियोजन है ही नहीं। यही वह बिन्दु था जहां एक रचनाकार से दूसरे एक नन्हें रचनाकार की भेंट हुई थी।



देवेन्द्र सत्यार्थी

एक के बाद दूसरा भाव बड़ी तीव्रता से आया और फिर भावों का एक रेला। इस छोटे परिचय में पुरानापन झलक मार रहा है। समनुरक्ति के फूलों के गुच्छों की बहार बांटते हैं सत्यार्थी। अगली बार कनाट प्लेस के उसी कॉफी हाउस में किसी लेखक मित्र ने इशारा किया था—देखो उस लेखक को—"एक कहानी सुनाने वाला है, एक कहानी सुना के बैठा है।" मुझे भी कहानी सुननी पड़ी थी। अंत में जिज्ञासु भाव से मैंने पूछ दिया था—"तब आगे क्या हुआ?"

हमारे गांव की ओर अवध प्रदेश में सावन में कजरी गाने का रिवाज है। जब से नई-नई धुनें गांव के कानों में बजने लगीं, कजरी धीरे-धीरे बिलाती जा रही है। भाभियां कजरी गातीं और देवर उन्हें सावन में झूला झुलाते। झूले आम, नीम, महुआ आदि की डालों पर लटकते पर कजरी में गाया जाता "झूला परे कदम की डारी, झूलैं राधा प्यारी ना"। यादों के खम्भों पर सोडियम लाइट के बल्ब जल उठे हैं। कजरी का भाव झूला झूलता आ पहुंचा है—"अरे, रामा, बेला फुलै आधी रात चमेली भिनसारे रे हारी...।" यह तो फूलों के खिलने का समय चक्र चित्रित किया जा रहा है। सत्यार्थी जी के फूलों की समय सारिणी से मिलाता हूं। बिल्कुल एक जैसी है। स्मृति की भास्वरता में एक अबोध अपनापन होता है। जिसे हम चाहते हैं उसकी छवि आकारित होते ही हम तन्मयता की भूमिका में पहुंच जाते हैं। इसी तन्मयता से हमारी जिन्दगी खुराक पाती रहती है।

सत्यार्थी यायावरी का चोगा पहने रहता है। वह झक्की रचनाकार है। पीछे पड़ जाता है सुनाने के लिए। ऐसे वाक्यों का कोई अंत नहीं था। पर मेरे लिए तो बेला का समीकरण पर्याप्त था। यह मेरा प्रिय फूल है। सत्यार्थी जी के लिए प्रतीक हो सकता है। मेरे लिए बेला पहले फूल है, बाद में श्रृंगार, प्रतीक, आस्था

कुछ भी हो सकता है। आज के समय से उस समय को मिलाता हूं, आज के रचनाकार से उस रचनाकार का तालमेल बैठाता हूं। अब यह जानने की फुर्सत किसे है कि बेला आधी रात को फूलता है। फूलता होगा। हम लकड़ी के फूल बनवाकर दीवाल पर टांग आधुनिक हो लेंगे। बेला फूलता रहे—जंगली कहीं का। यदि समय ने बेला को पीछे छोड़ दिया तो इसमें फूल का क्या दोष? समय उसे साथ रखता तो खुशबू फैली रहती। भाग्योदय को कभी अंधेरा न सताता।

सत्यार्थी खुशबू की खोज में दूर-दूर घूमते-फिरते हैं। पता नहीं कितना लम्बा रास्ता उन्होंने तय किया होगा। यात्राओं के मार्ग की जितनी लम्बाई होगी, जमीन के साथ प्रेम की डोर भी उससे कम नहीं होगी। इस लम्बी यात्रा में लोक छवि का आकर्षक, मनमोहक विस्तार छपा है। आज जन और जनवाद का शोर लोक की बातें तो बहुत करता है पर वहां लोक है नदारद। यह साहित्यकार का अलबम ही है जहां लोक की छवि कभी धूमिल नहीं होती। सत्यार्थी जी चेतना की ऊंचाई पर आंखों के कैमरे से समाज का अक्स उतारते हैं। पीछे वह जो छोड़ आए हैं, वह नई पीढ़ी के लिए धरोहर है। आगे उन्हें जो मिलेगा, वह उनकी उपलब्धि है।

वे केवल रेखाएं नहीं खींचते बल्कि उनमें रंग भर कर फूल भी बनाते हैं। फूल की आकृति को रेखाएं बांधे हुए हैं। बिना रेखाओं के समाज ही आकृति-शून्यता का शिकार हो जाएगा। माहिया और हाइकू का तालमेल बैठाते हुए रचनाकार रेखा और रंग के साथ को नहीं भूलता। सोचता हूं, यह सम्मिलन ही सृष्टि का मूल है। कला का प्रस्थान बिन्दु है। और आगे कलम का जादू बोलने लगता है। प्राण-रस से सींच कर सृष्टि के रंग को सृष्टिकार चटख करने लगता है। सोचते हैं सत्यार्थी जी कि स्लेट पर खिंची रेखाएं मिटाई जा सकती हैं पर जो रेखाएं धरती के फलक पर सूरज की किरणों ने खींच दी हैं उनको तो क्षणजीवी नहीं कहा जा सकता। कवि और कलाकार की रेखाएं भी ऐसी ही हैं। दोनों रचनाकार जो हैं। तभी तो सत्यार्थी जी अपने चरित्र रूप चैतन्य के सामने रेखाओं की जय बोलते दीखते हैं।

जंगल बहुत जंगली है। घना है। समृद्धिशाली भी है। उसके पास गुंजा है और है गजमुक्ता भी। प्रश्न है पहचान का। पहचानेगा वही जो अनुभव की आंच में तपा है, अनुभूति की लहरों पर ऊभचूभ किया है। मरजीवा बनकर इस खिलाड़ी और बहुरूपिया संसार को मुलुर-मुलुर देखता रहा है। तभी तो उसे रेखाओं की बोली का पता है, उनकी चाल का दस्तावेज उसके पास है। सत्यार्थी जी की रेखाएं बोलती-बतियाती हैं। कविता, कहानी, रिपोर्ताज, उपन्यास-रचना के एक तट से दूसरे तट तक जहां कहीं उन्हें अपना 'लोक' दीखा है वे कुर्बान होने के लिए तैयार हो गए हैं। ताजिकस्तानी कवि मिरजो जदेह ने सन् 1947 के एशियाई सम्मेलन में भारत आकर अपनी कविताओं में भारत की लोक छवि उतारी थी। उसी समय सत्यार्थी जी सोचते हैं कि यदि उन्हें ताजिकस्तान जाकर वहां की लोक-विस्तृति को रूपायित करने का अवसर मिले तो सिद्ध हो जाएगा कि शरीर अलग-अलग हो सकते हैं पर दिलों की धड़कन एक जैसी है। फिर यह मारधाड़, उत्पात, छीनाझपटी और शोषण क्यों?

प्रथम महायुद्ध में देवेन्द्र सत्यार्थी की उम्र छः साल रही होगी। द्वितीय महायुद्ध के काले बादलों को पश्चिमी आसमान पर उड़ते उन्होंने देखा है। खून की प्यासी पल्टन खून के धब्बे हरी-भरी धरती पर छोड़ती चली जाती है। मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों का इतिहास लिखते ये धब्बे मनुष्य की आदिम बौखलाहट का परिचय देते हैं। ये परिचय तोप और तलवारों में उतना नहीं झलकते जितना कि लेखनी के जरिए प्रकट होते हैं। लेखनी चाहे चीनी कवि थिएन तिङ की हो या फिर देवेन्द्र सत्यार्थी की। और सत्यार्थी का साहित्य मनुष्य और मनुष्य के बीच का पक्का अनुबंध है जिसके लिए किसी आलोचक के साक्ष्य की आवश्यकता नहीं।

सत्यार्थी जी के साहित्य को एक बैठक में नहीं बांचा जा सकता। वह विपुल रंगों और रेखाओं वाला है। कहा न, कि आंखों के कैमरे घूमते रहते हैं। दुनिया के अनंत विस्तार को लघु आकारी बनाकर लेखक अपने पाठकों के रीडिंग रूम में डाल आता है। यह किसी सुसज्जित वातानुकूलित कार्यालय की देन नहीं है। इसे धरती से रस खींच कर संवारा गया है। एक-एक इंच जमीन मापकर इस खाके को तैयार किया गया है। यह किसी भावुक का वायवी कल्पनालोक नहीं है। इसे हम यथार्थ का अजस्र निर्झर कह सकते हैं। अनंत काल से बहते हुए यह कभी चुकता ही नहीं है।

लेखक और यायावर सत्यार्थी के लिए यह धरती और इस पर झरने वाली ऋतु वसंत प्रणम्य है। प्रणाम की मुद्रा समर्पण की मुद्रा होती है। वसंत के प्रति समर्पण का मतलब है प्रकृति के अतुलनीय, ऐश्वर्यशाली सौन्दर्य के प्रति समर्पण। वसंत के रंगों के बहाने फूल नया संदेश लेकर आए हैं। सत्यार्थी जी सोचते हैं कि यह संदेश मेरे तेरे नाम नहीं बल्कि राष्ट्र के नाम है। लेखक की यह राष्ट्रीय दृष्टि उसको वैश्विक मंच पर ला खड़ा करती है। और यह बिन्दु लेखक के प्रयाण की मंजिल है। सत्यार्थी जी की लेखनी थमती नहीं है। वे लोक कवि के चित्र को दुबारा उरेहने लगते हैं। वसंती बयार की मादकता में प्रिया का बालम सो गया है। इतनी घनीभूत निद्रा है कि वह जागती ही नहीं। प्रिया ने थाली भर चंदन घिस रखा है। उसी के छींटे दे-दे कर जगाती है। कमनीयता और दुलार की यह प्रक्रिया प्रगाढ़ प्रेम की इतिहास-कथा बनकर कानों में गूंजती है। वसंत जब आता है, धरती का कण-कण गाने लगता है। हरियाली स्नात भूमि पर छोटे-बड़े फूल हंस-हंस कर कविता लिखने लगते हैं। सम्पूर्ण प्रकृति धरती के आंचल पर काव्यांकित छवियां निहारती है। कवि का मन झूम उठा है। वह फूलों के रंगों में जीवन खोजने लगा है।

फूलों का मेला कभी न कभी तो खत्म होता है पर यादों की चित्रपट्टी पर वह रंग और रेखाओं में सदैव बोलता रहता है। यह तो प्रकृति की पुस्तक के पन्ने का एक पृष्ठ है। दूसरे पृष्ठ पर वही रेखाएं और रंग कंकड़ उरेह रहे हैं। लेखक के दादा का देखा और दिखाया गया स्वप्न बोध अगर साकार होता तो शिकायत की कोई गुंजाइश न होती। आजादी का सूरज आया तो, किन्तु आने के समय वह लहू लुहान था। सपने में कहीं अधबनी सड़क अपने ऊपर बिछे कंकड़ों का बोझ ढो रही थी। विश्वास था कि गांधी जी के स्वराज में निश्चय ही यह सड़क ठीक हो जाएगी। लेखक का स्वप्न महल ढह गया है। सड़क की लम्बाई के साथ कंकड़ों की संख्या बढ़ती गई है। और आज जब अगली पीढ़ी की लेखनी उस

कंकड़ को रेखाओं में बांधने निकलती है तो उसे कहीं भटकना नहीं पड़ता। राजनीति के शीर्षासन से राष्ट्र के स्वास्थ्य पर कोई असर नहीं पड़ रहा है। सत्यार्थी जी जनता को गवाह बनाकर इतिहास बदलने की बात करते हैं सही, पर साहित्य में झलमलाने वाले इतिहास के सन्दर्भ में यह बात ज्यादा सही है, बाकी तो इतिहास बदलता कम है, बदलवाया ज्यादा जाता है। गांधी जीवित होते तो अपनी लीक पीटने वालों के कारनामे देखकर अपने बंदर की भांति आंखें बंद कर लेते।

सत्यार्थी जी की साहित्यिक पिटारी में अनोखा माल है। ऐसा माल जिस पर दृष्टि तो सभी की पड़ी है पर ध्यान कम लोगों ने दिया है। धूल-धूसर गांव के हृदय को पहचानते हुए लेखक कहता है कि वहां धूल भरे वातावरण में ही उत्सव के फूल खिलते हैं। शहरी संस्कृति को संवारने के लिए कभी-कभी गांव वालों को कृतार्थ किया जाता है। पर शहर में जाकर ग्रामता काफूर हो जाती है। सत्यार्थी के रचनाकार के पास अपनी मर्म संग्राहिका आंखें हैं। वे असलियत पहचानते हुए अपने वर्तमान के फलक पर भविष्य लिखती रही हैं। इस प्रवृत्ति से उनका रंग और रेखाओं वाला साहित्य प्राणवान बना है। वह अष्टधातु वाली ऐसी रचना है जिस पर समय की आर्द्रता का जंग कभी नहीं लगेगा। इतिहास बदलता है, बदले पर समय के अलबम में यह सदैव पुष्पित मिलेगी। रचना जीवन है। जीवन संघर्ष है। संघर्ष में उत्सव पलते हैं। यही उत्सव जीवन को जीवन्त बनाते हैं। एक राही पाथेय की पोटली बांधे अपने को ही खोजने निकल पड़ा है। आप उसे अपने दस्तावेजों से खारिज नहीं कर सकते। और यदि ऐसा हुआ तो वे दस्तावेज अनेक प्रश्नवाचक चिह्नों से घिर जाएंगे। जिन मेलों को सत्यार्थी जी ने याद किया है उनकी व्यवस्था में हाकिम-हुक्काम नहीं रहते। जैसे वसंत आने पर आम को मंजरी दिखाने की चिन्ता हो जाती है वैसे ही मेलों की तिथि आने पर जन-जन की उत्सवी मुद्राओं में थिरकन भर जाती है। सत्यार्थी जी आलोचक से लाठी उठाने की बात करते हैं। मैं सोचता हूं—रेखा, रंग फूल, आसमान, चांद, किरण, मेला और उत्सव—कहां पड़ेगी लाठी। जिस दिन आलोचक की लाठी से लेखक हांका जाएगा, वह साहित्य-सृजन के लिए काला दिन होगा।

लेखनी आगे बढ़ेगी तो चित्र बनेंगे ही। मर्मी तूलिका में स्पन्दन होगा तो रंग का रचाव अवश्य उभरेगा। खुली आंख कुछ न कुछ जरूर देखेगी। नदी की धार तेज होगी तो पानी की गुफाएं आकार पाएंगी ही। ये सारे प्रयास सही पहचान रखने वाले के लिए केवल आनंददायक ही नहीं, उत्साहवर्धक भी हैं। सत्यार्थी जी के लेखन को जिस कोण से देखता हूं, वैविध्य में उसे बोलता हुआ पाता हूं।

मैंने कहा था प्रारंभ में कि मस्तमौला बांसुरी वादक निरन्तर टेर रहा है। जंगल ने पूछा है उससे कि इस बांसुरी को इतना मीठा स्वर कहां से मिला है? बांसुरी वादक की मुस्कान प्रश्नात्मक उत्तर देती है—"तुम्हें इतना भी नहीं पता कि मैं इसमें अपना प्राण फूंकता हूं? □

शांति द्वीप, 4 वाणी विहार
उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

(पृष्ठ 8 का शेष)

शेष रही एक कथन/एक यातना ठंडी
एक जलन, एक चुभन/छोड़ गई यात्राएं।"

(75/खुशबुओं के दंश)

प्रति दिन हम यात्रा पर निकलते हैं और किस प्रकार थक कर, चूर होकर यातनाओं को भोगते हुए लौटते हैं, यह मध्यमवर्गीय व्यक्ति भली प्रकार जानता है। हरीश निगम के नवगीतों में जो सौन्दर्य बिम्ब देखने को मिलते हैं वे रोमानियत के संस्पर्श या संस्कार से अनुप्राणित होते हैं किन्तु उनका अपना अलग सौन्दर्य है :

"फागुन है गाल में
पुंछी पुंछी बिंदिया की धारियां
एक प्रणय उत्सव सा
लिख गईं/महकी सिसकारियां।"

(113/यात्रा में साथ साथ)

हरिशंकर सक्सेना के गीत बिम्ब मौलिक सौन्दर्य भूमि पर भले ही खरे न उतरते हों किन्तु उनकी प्रस्तुति सौन्दर्य की जनयित्री होती है :

"दिन हुए धृतराष्ट्र/रातें गांधारी हो गईं
आस्थाएं रूपकंवरों सी/चिता पर सो गईं।"

(59/सन्नाटा मत बुनो)

आज देश में शताधिक नवगीतकार हैं जो नवगीत की सौन्दर्य भूमि को विस्तृत करने का यत्न कर रहे हैं, जिसका आधार मध्यमवर्गीय या निम्नवर्गीय व्यक्ति की ही संवेदना है। कुछ विचारकों ने छायावादी कविता के बाद की कविता में सौन्दर्य का अभाव बताया है किन्तु यह उनकी जड़तावादी दृष्टि है क्योंकि सौन्दर्य काल-सापेक्ष है। नई कविता में अवश्य ही सौन्दर्य का अभाव हो सकता है, किन्तु नवगीतकारों ने बड़ी खूबसूरती से जीवन के विरूप चित्रों को भी गढ़ा है। सात महारथियों से घिरे संघर्षरत अभिमन्यु का चित्र देखकर युयुत्सा के भाव का जो आनन्द मन में भर जाता है वही इस समय के नवगीत का सौन्दर्य है। आज की कविता का सौन्दर्य उसके व्यंग्यार्थ द्वारा ही निर्धारित किया जा सकता है। पारंपरिक सौंदर्यान्वेषकों ने कुछ शब्दों को सुन्दर व मधुर मानकर रस, छंद व अलंकारों के आधार पर काव्य सौन्दर्य को तोला है, किन्तु आज वैसी स्थिति नहीं है। समय के साथ ही हमारे सौन्दर्यपरक मूल्यों में भी परिवर्तन हुआ है।

नवगीत ने अपनी सौन्दर्य भूमि को ऋग्वेद की ऋचाओं, सामवेद के मंत्रों, रामायण और महाभारत के उपाख्यानों, थेरी गाथाओं, कालिदास, जयदेव, शेक्सपियर, गुरुदेव रवीन्द्र, वर्डस्वर्थ के गीतों; सूर, तुलसी, मीरा के पदों; बिहारी और पद्माकर के छंदों; प्रसाद, निराला, पंत, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी एवं महादेवी के गीतों से संश्लिष्ट कर रखा है। अतः नवगीत का सौन्दर्य अक्षय है। इस प्रकार नवगीत की सौन्दर्य भूमि का विस्तार होता जा रहा है अथच् होता रहेगा। □

एफ-2/25, दयालपुरा दिल्ली-110094

सवेरे की सैर

नरेन्द्र लूथर

किसी पार्टी में एक महाशय ने डींग हांकी—"मैंने आज से सिगरेट पीना छोड़ दिया है।"

पास ही खड़े हुए उसके दोस्त ने ललकारा—"वाह! इसमें कौन सी बड़ी बात है। मैंने कई बार सिगरेट पीना छोड़ा है।" अभी तक हमारी सैर का भी कुछ यही हाल था। हमने कई बार सैर करना शुरू किया लेकिन चन्द रोज के बाद ही वह सिलसिला टूट गया। पिछले बीस बरसों में हमने कम से कम चालीस बार यह कोशिश की है मगर हर बार नाकामी हासिल हुई। गर्मियों में सैर करना शुरू किया तो पसीना छूटने लगा। सर्दियों में आजमाइश की तो ठिठुरने लगे। पतझड़ में ये नेक इरादे पीले पत्तों की तरह झड़ गए। बसंत में तय किया तो अपने मूड और बगीचे के इतवार में सामंजस्य स्थापित न हो सका।

परिणामस्वरूप हम अभी तक कभी भी दस पंद्रह दिन से ज्यादा लगातार सैर नहीं कर पाए। लेकिन इन्सान हिम्मत न हारे और कोशिश करता रहे तो क्या कुछ नहीं कर सकता। इस साल हमारा रिकार्ड पैंतालीस दिन तक पहुंच गया है और हमें ऐसा लगता है अब यह आदत पक्की हो गई है।

हमें यकीन है, आप में से कई होनहार लोग इस शानदार मिसाल को फॉलो करना चाहेंगे और होना भी ऐसे ही चाहिए। आखिर अच्छी आदतें और नेक चलन इसी तरह फैलते हैं। लेकिन हम यह स्टेच्यूटरी वार्निंग देना अपना फर्ज समझते हैं कि यह काम इतना आसान नहीं। इसके लिए बुलन्द इरादे, हिम्मत और बुर्दबारी (गम्भीर व्यक्तित्व) के अलावा प्लानिंग की भी जरूरत होती है।

दो काम एक वक्त करना आसान नहीं। इसलिए हमने इस बार सैर करने की मुहिम में कामयाबी हासिल करने के लिए दफ्तर से दो महीने की छुट्टी ले ली। अगर दफ्तर जाने का डर लगा रहे तो इन्सान पूरी लगन से सैर की तरफ रुझान नहीं कर सकता।

आजकल हम तड़के उठते हैं, सैर करने जाते हैं, सैर से थककर वापस आते हैं और फिर इत्मिनान से सो जाते हैं। इस तरह अपनी खोई हुई नींद पूरी करते हैं। चूंकि हमें दोनों बातों का तजुर्बा है इसलिए यह कह सकते हैं कि दफ्तर के मुकाबले घर में सोना कहीं बेहतर है। दफ्तर में तो कोई न कोई आपको डिस्टर्ब कर देता है। अगर आप किसी को अपने कमरे के अन्दर न भी आने दें तो भी लन्च टाईम हो जाता है या फिर जब आप खरटि ले रहे हों तो दफ्तर में छुट्टी हो जाती है लेकिन घर में तो आप आराम से सो सकते हैं और कम से कम दिन के वक्त तो आपको कोई डिस्टर्ब नहीं कर सकता।

खैर, सैर शुरू तो कर दी, लेकिन इसकी बाकायदगी की प्रेरणा उन नजारों से मिली जो इस बार हमें सैर करते वक्त देखने को मिले। आज तक हम सड़कों पर सैर करने की कोशिश करते रहे लेकिन इस बार हमें सैर के लिए एक पार्क मिल गया। दिल्ली में ऐसे कई पार्क सरकार ने बनाए हैं जहां सैर बड़ी अच्छी तरह की जा सकती है। एक ऐसे ही पार्क के पास हमें घर मिल गया। बस, साबित हुआ कि बाकायदा सैर के लिए एक पार्क का होना लाजिमी है। बेहतर तो यह है आप एक अदद पार्क खरीद लें। अगर इतना भी न कर सकें तो किसी तरीके पार्क तक पहुंचने का इन्तजाम कर लें। कार पर, स्कूटर पर, साइकिल पर। अगर अपनी टांगों पर ही वहां पहुंचेंगे तो वहां तक पहुंचते-पहुंचते ही अपकी सैर खत्म हो जाएगी।

सुबह के वक्त सिर्फ अमीर या मध्यमवर्गीय तब्के के लोग ही सैर करते हैं। गरीब लोग इस वक्त काम पर जाते हैं इसलिए उन्हें सैर की जरूरत नहीं होती। लिहाजा अगर आप अमीर बनना चाहते हैं तो सबेरे की सैर शुरू कर दीजिए।

सुना है सैर से सेहत अच्छी रहती है। लेकिन हमने सैर करने वालों की खराब सेहत भी देखी है और सैर न करने वाले सेहतमंद लोग भी देखे हैं। इस दावे का कोई सबूत नहीं लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि इनके पास सबूत है। इन्होंने चन्द खरगोशों को कुछ अर्से के लिए रोजाना सैर करवाई, जिससे उनकी सेहत बेहतर हो गई। फिर उनकी सैर बन्द कर दी। इससे उनकी सेहत गिर गई। हमें खरगोश बड़े अच्छे लगते हैं। कितने भोले, प्यारे और डरपोक होते हैं। जो बात खरगोशों को रास आती है वह हमारे लिए भी ठीक होती है। इसलिए हमने इस सबूत को तस्लीम कर लिया।

सैर अकेले की जा सकती है या दोस्तों, हमसायों के साथ या बीवी के साथ या फिर कुत्ते के साथ। जो लोग दोस्तों के साथ सैर करते हैं वे सैर कम और खुशगप्पियां ज्यादा करते हैं। ऐसी सैर के दौरान ताजातरीन खबरें, करंट अफेयर्स पर कमेन्ट्री और राजनैतिक भविष्यवाणियां बड़ी बुलन्द आवाज में और बड़ी दूर तक सुनी जा सकती हैं।

अगर खाविंद (पति) और बीवी सैर को इकट्ठे जाएं तो जहां खाविंद के सिर्फ पांव चलते हैं वहां बीवी के पांव कम और जुबान ज्यादा चलती है। कुदरती बात है बेचारी को तमाम रात खामोश सोना पड़ता है। सुबह उठने पर मर्द सबसे पहले आंख खोलता है और औरत जुबान। सैर में खाविंद को यह फायदा होता है कि अगर वह बीवी की बातें न भी सुने तो भी बीवी दरख्तों और झाड़ियों से मुखातिब हो सकती है और उसे यह भ्रम रहता है कि उसकी बातें सुनी जा रही हैं। इसलिए बीवी की सेहत के लिए सैर एक मुफीद टॉनिक से कुछ कम नहीं।

हमने बेगम को इस शर्त पर साथ ले जाना शुरू किया कि सैर के दौरान खामोश रहेगी। नतीजा यह हुआ कि एक ही हफ्ते में उन्होंने सैर करना छोड़ दिया। कहने लगी कि आप तो हवाखोरी करते हैं और मैं घुटन से मरती हूं।

कुत्तों के साथ सैर करने वालों को देखकर यह पता लगाना मुश्किल होता है कि मालिक कौन है और कौन किस को सैर करवा रहा है। कुत्ता मालिक को जगह-जगह रोकता है, तेज-तेज आगे निकलने की कोशिश करता है या सुस्त रफ्तारी से पीछे रह जाता है। कभी अचानक रुक जाता है, घास के पत्ते या पत्थर या फिर

किसी खम्भे को सूंघना शुरू कर देता है। किसी एक खास जगह का इन्तखाब करके उसके गिर्द घूमना शुरू कर देता है, फिर वह ऐसे इत्मिनान से वहां रुक जाता है मानों जिस मंजिल की तलाश थी वह उसके कदम चूमने लगी है। इस वक्त कुत्ते का मालिक अपना 'एम्बेरसमेंट' (शर्मसारी) छुपाकर ऐसी अन्यमनसक निगाहों से दूसरी तरफ देखना शुरू कर देता है जैसे इस बदतमीज जानवर से हमारा कोई सरोकार नहीं। हमने कई बार ऐसे अटके हुए साहबों को ओवरटेक किया है। लेकिन सैर पर कुत्ते को साथ रखने में एक खास शान होती है। इससे साहबी की सनद होती है।

एक शख्स जो रोज अच्छा भला अकेला सैर को आता था, देखादेखी एक दिन एक कुत्ते को साथ घसीट लाया। उसके एक दोस्त ने बड़ी मासूम हैरानी के साथ पूछा, "गधे को सैर कराने लाए हो?"

उस शख्स ने बड़े फख्र से देखा और जवाब दिया, "यह गधा नहीं कुत्ता है कुत्ता।" दोस्त ने उसे इग्नोर करते हुए कहा—"मैं तुमसे नहीं इस कुत्ते से पूछ रहा हूं।"

कुछ लोग तेज-तेज सैर करते हैं, कुछ लोग चहलकदमी करते हैं, कुछ बड़ी मुश्किल से चल पाते हैं। सैर की किस्मों की तरह सैर करने वालों की पोशाकें भी अलग-अलग किस्म की होती हैं। एक साहब गोया विम्बलंडन से बोर्ग के साथ मैच खेलकर आ रहे हों। दूसरे साहब पटौदी के डबल लगते हैं। तीसरे जनाब इतने गर्म कपड़े पहने हुए हैं जैसे साइबेरिया जा रहे हैं। उन्हीं के सामने साथ ही साथ चन्द नौजवान सिर्फ निक्कर और बनियान में ही देखे जा सकते हैं। कुछ लोग इतने इन्फार्मल कि नाइटसूट में स्लीपर घसीटते-घसीटते चले आते हैं। एक ग्रुप ऐसे लोगों का भी है जो धोती ऊपर करते हुए निकलते हैं। मुल्क की आजादी के बाद यह पोशाक हर जगह, हर मौके पर बेझिझक पहनी जा सकती है।

औरतें तो खूब सजधज कर सैर को निकलती हैं। हमारे एक दोस्त की बीवी सिर्फ इसलिए सैर करने नहीं आती कि उनका खाविंद उनके लिए सैर वाली पोशाकें लाकर नहीं देता। भला एक ही ड्रेस में वो रोज-रोज कैसे सैर कर सकती है। पड़ोसिनें क्या कहेंगी?

चन्द खुशमिजाज महिलाएं अच्छी पोशाक के अलावा इत्र और सेंट वगैरह लगाकर सैर पर निकलती हैं। यह जो कहते हैं कि फूलों में खुशबू होती है तो इन्हीं के दम-ब-दम से है। जिधर से गुजरती हैं भीनी-भीनी महक छोड़ती जाती हैं वर्ना आजकल के फूलों में वो महक कहां जिसकी हमारे गजल गो शायर अभी तक चर्चा किए जाते हैं। उनमें कभी कोई सवेरे सैर करने गया है? यूं तो एक बार हम भी शर्त हार चुके हैं। एक चित्रकार की कृति को हमने सूर्योदय बताया और यह साबित हो गया कि इन चित्रकार महाशय ने होश संभालने के बाद सूर्योदय देखा ही नहीं क्योंकि देर सवेरे उठने की उनकी आदत उनकी दिनचर्या का अभिन्न हिस्सा हो गई थी। लिहाजा उनका चित्र सूर्यास्त का ही है। खैर साहब उन चित्रकार महोदय की काहिली का नजला हम पर भी पड़ा।

पार्क में सुबह के वक्त एक फैशन परेड होती है जो शहर के बड़े-बड़े होटलों में होने वाली परेडों से कहीं बेहतर होती है।

अक्सर लोग पार्क में सैर करने के बजाए किस्म-किस्म की वर्जिशें करते हैं। अखाड़े वाली वर्जिश, योगा, जॉगिंग, कई किस्म की कसरतें वहां देखी जा सकती हैं। अधेड़ उम्र की आठ-दस औरतों और मर्दों का एक कोएज्यूकेशनल ग्रुप है। वे पहले तो उछलते-कूदते हैं फिर मिलकर जोरदार कहकहे लगाते हैं। उन्हें बेढंगेपन से कूदते देखा तो हमने समझा शायद पागलखाने से कुछ पागल लोगों को चहलकदमी के लिए लाया गया है। फिर उनके कहकहे सुने तो लगा हमारा मजाक उड़ाया जा रहा है, हालांकि हम बिल्कुल सही तरीके से सैर कर रहे थे और हमारा ड्रेस भी मुनासिब था। एक सीनियर सैर करने वाले ने बताया कि ये नार्मल लोग हैं और कूद-कूद कर जिस्म की और कहकहे लगाकर फेफड़ों की वर्जिश करते हैं। यह वर्जिश उन लोगों के लिए मुफीद है जिनकी जिन्दगी में हंसी की कमी है और जो कहकहे लगाना भूल गए हों। एक दिन उनसे कुछ फासले पर खड़े होकर हमने भी कहकहा लगाया। हमें यह देखकर बड़ी हैरानी हुई और खुशी की लहर हमारे चेहरे पर दौड़ गई कि हम भी अभी तक कहकहा लगा सकते हैं।

इन 'खालिस' सैर करने वालों के अलावा कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सैर के बहाने कुछ जरूरी काम भी कर लेते हैं। कई दब्बू किस्म के खाविंद, बीवियों के पहलू से उठकर अपनी मांओं की याद में 'मदर डेयरी' के बूथ पर खड़े पाए जाते हैं। चन्द लोगों को आलू और प्याज की ढेरियों को उलट-पलट करते देखा जा सकता है। ये बेचारे कितनी ही कोशिश करें, घर पहुंचने पर जरूर इनकी मरम्मत होगी कि इतनी खराब और मंहगी सब्जी क्यों लाए हो।

एक साहब हैं जो चींटियों को ढूंढते रहते हैं। जहां भी इन्हें चींटियों का कारवां मिलता है, वो अपने थैले में से आटा निकालकर उन पर फैंकते चले जाते हैं। हमने सोचा कि इस तरह शायद वो पुण्य कमाना चाहते हैं लेकिन पता चला कि वो राशन के आटे से चींटियों को मारने की कोशिश करते हैं।

एक दूसरे साहब पार्क की दीवार के साथ बड़ी देर तक लगे सिसकियां लेते रहते हैं। हमने इन्हें यहूदी समझा लेकिन गौर से देखा तो सरदार साहब निकले। गालिबन अपने नाकरदा गुनाहों के पछतावे के तौर पर यह हरकत इनसे सरजू होती है।

इन लोगों के अलावा एक तब्का कुदरतपरस्तों का है। ये लोग पौ फटने से पहले ही अपनी 'सैर' खत्म करने की कोशिश करते हैं। अगर अंधेरे में गौर से देखा जाए तो पता चलता है कि अक्सर इन लोगों के हाथों में एक पुराना लोटा हो या डिब्बा या बर्तन होता है। मौका मिलते ही ये लोग दरख्तों के पीछे झाड़ियों की ओट में गायब हो जाते हैं फिर प्रकट होते हैं तो मुंह में लकड़ी का एक टुकड़ा होता है जिसे चबाने की वे नाकाम कोशिश करते हैं। इनका यकीन है कि लकड़ी को चबाने की कोशिश में जो दांत बच जाएं वे निहायत मजबूत हो जाते हैं। ऐसे लोग वापसं घर पहुंचते-पहुंचते दो बटा तीन तैयार होते हैं। क्या किया जाए कुछ लोग जिंदगी की हर तफरीह से कुछ न कुछ मुफीद, नाजायज और कारामद पहलू निकाल लेते हैं।

(शेष पृष्ठ 48 पर)

10% की छूट

साहित्य अकादेमी
के
नए प्रकाशन

पतझर की आवाज (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत कहानियां)	**लेखिका कुर्रतुल ऐन हैदर**	60 रुपये
मुक्तिबोध की कविताएं	**सम्पादक त्रिलोचन शास्त्री**	60 रुपये
उपरवास कथायात्री	**लेखक एवं अनुवादक रघुवीर चौधरी**	120 रुपये
सोने की चिड़िया (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत कहानियां)	**लेखक एवं अनुवादक ओम गोस्वामी**	40 रुपये
रवीन्द्रनाथ के निबन्ध (भाग-1)	**अनुवादक विश्वनाथ नरवणे**	75 रुपये
रवीन्द्रनाथ के निबन्ध (भाग-2)	**अनुवादक अमृतराय**	75 रुपये
बाबरनामा	**अनुवादक युगजीत नवलपुरी**	75 रुपये
ठाकुर रघुनाथ सिंह सम्याल	**लेखिका : चम्पा शर्मा**	10 रुपये
बुद्धदेव बसु	**लेखक एवं अनुवादक : रघुवर चौधरी**	10 रुपये

—डाक व्यय निःशुल्क
—शुल्क मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट द्वारा सचिव, साहित्य अकादेमी के नाम।
—अधिक जानकारी और निःशुल्क सूचीपत्र के लिए लिखें :

बिक्री प्रबन्धक
साहित्य अकादेमी
'स्वाति', मंदिर मार्ग,
नई दिल्ली-110001

पुस्तक समीक्षा

संध्या का सूरज : आने वाला कल

उषा और सांध्य बेला ने विश्व साहित्य को कितनी कविताएं दी होंगी इसका अनुमान लगाना कठिन है। मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने संधिकाल में ऋचाओं को जन्मा और फिर अन्तर्मन की उष्मा सूर्य तक जा पहुंची। सूर्योपासना भारत में ही नहीं विश्व के अनेक भूखंडों में गीत-संगीत के माध्यम से प्रारंभ हुई होगी। सूर्य की मुस्कान जीवन है और क्रोध 'दारूण दाघ निदाघ' की भाषा में झुलस देता है जड़-चेतन को। किन्तु संध्या का सूरज अस्ताचल के अवसाद में डूबता समय है। विछोह की त्रासद रात्रि का निमंत्रण है। नीर भरी पीड़ा में खींचता कोई दुःस्वप्न है। हां, इस स्वप्न में कहीं भोर के सूरज को पुकारती संजीवनी भी है और यही संजीवनी सन्निहित है डा. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी के 'संध्या के सूरज' में, जिसमें युगांतर झलकता है। समय के अंकुर हैं। स्वयं कवि के शब्दों में–

समय के अंकुर समय को जन्म देते
समय के ही गर्भ से उत्पन्न होते
प्रगति के क्रम,
और व्यतिक्रम, अतिक्रमण भी,
अरुण शोषित धमनियों में समय की कहता रहा है
पांच गांवों से नहीं संतुष्ट है वह
महाभारत मांगता है, वह युगांतर मांगता है,
स्वर्णयुग के दिवास्वप्नों के चितेरे, आंख खोले! (पृ.84)

आंख खोलने का संदेश राष्ट्र-समर्पित कोई लेखनी ही दे सकती है। अल्लोपनिषद् की भांति संसदोपनिषद लिखने वाला मन अमन के संवत्सर में गोर्बाचौफ के शौर्य और साहस की दाद दे सकता है। किन्तु वह अपने देश के दुःशासनों की भी खबर लेने में पीछे नहीं रहता। द्रष्टव्य है:

दुःशासन का शासन जनता को स्वीकार नहीं है
धर्मराज को द्यूत खेलने का अधिकार नहीं है!
दुर्विनीत, उद्दण्ड, निरंकुश शासन नहीं सहेंगे;
मनुज-विरोधी सत्ता के सिंहासन नहीं रहेंगे! (पृ. 97-98)

'संध्या का सूरज' विभिन्न कालावधियों में विरचित अलग-अलग मूड की कविताओं का संग्रह है जिनमें कवि कहीं नियति से झंझावाती प्रश्न करता है, कहीं स्वर्ग और पृथ्वी को जोड़ने के रहस्य खोजता है। कहीं उसे बेहिसाब बंटी जिन्दगी चिरनिद्रा की ओर ले जाती है तो कहीं पंचभूतों के ऋण उतारने की चिंता सताती है। और इसी क्रम में उसका सृजन आत्मकथ्य की विविध तात्विक-बौद्धिक-वैचारिक 'वीथियों' से गुजरता अपने समय का दस्तावेज बन जाता है। अमृता प्रीतम के शब्दों में:

"कहना होगा कि इंसान को अगर कुदरत का कोई वरदान मिला है तो यही कि कुदरत ने उसे संकल्प की माटी से बनाया है–इसी माटी को उसकी पहचान देना–उनकी कविताएं हैं।"

किन्तु मैं इस संदर्भ में स्वयं कवि के शब्दों को उद्धृत करना चाहूंगा।

मैं कवि नहीं, मनुज का मन हूं,
सहज हृदय का संवेदन हूं,
जिए हुए अनुभव का क्षण हूं,
मैं क्षण की शाश्वत धड़कन हूं। (पृ. 37)

और यह धड़कन नए जीवन जगाने के लिए विश्वास की भोर जन्माती रहेगी। संध्या के सूरज को गुरुमंत्र देकर स्वयं हलाहल पीती रहेगी।

ये कविताएं घिसी-पिटी समीक्षा शब्दावली की मोहताज नहीं हैं और न ही उन्हें किसी इतिहास का कोई अनुच्छेद चाहिए। हां, एक सत्य अवश्य उद्घाटित होता है और वह यह कि कविता के लिए बौद्धिकता, विशेषज्ञता, प्रशासनिक योग्यताएं अथवा विषय की विविधता आड़े नहीं आती, बल्कि सृजन को नया विस्तार देती हैं और नए आयाम भी देती हैं। □

पुस्तक : 'संध्या का सूरज'; लेखक : डा. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; पृष्ठ संख्या : 106; मूल्य : 60 रुपये।

नवद्वीप : एक और रामायण

कविवर श्री कृष्ण राय हृदयेश द्वारा रचित काव्यकृति 'नवद्वीप' को पढ़ते समय राष्ट्रपति मैथिलीशरण गुप्त का यह कथन अनायास स्मरण हो आया : राम तुम्हारा चरित स्वयं महाकाव्य है। कोई कवि बन जाए सहज सौभाग्य है। 'नवद्वीप' में कैकेयी का चरित्र अन्य सभी पात्रों से ऊपर उठ गया है। राम-रावण संग्राम में विजयश्री राम की नहीं थी, कैकेयी की थी जिसे मर्यादा पुरुषोत्तम स्वयं स्वीकारते हैं। कवि हृदयेश का यह कथन कितना मार्मिक लगता है :

नहीं, नहीं,
थी विजय मिली माता को
उसके सद्उद्देश्य को
जिसका थोड़ा श्रेय मुझे भी प्राप्त हो गया
ऐसी यशस्विनी मां को शतशः प्रणाम में
उसके चरणों में, उसका यह पुत्र पड़ा है
और
स्नेह से प्रभापुंज वह आज फिर बनी।

नवद्वीप; कवि : श्री कृष्ण राम 'हृदयेश'; प्रकाशक : शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या : 200; मूल्य : 125 रुपये।

कल्पना कीजिए उस सौतेली मां की जो अपने बेटे से बढ़कर सौतेले बेटे को प्यार करती हो। श्रृंगी ऋषि की खीर से जिसका मातृत्व जिया हो। विश्वामित्र को कैसे सौंप दे उसे? लेकिन आर्य जाति की रक्षा का दायित्व जो था उस पर और इसलिए कलेजे पर पत्थर रखती हुई दशरथ को किसी वरदान का स्मरण कराने पर विवश हो जाती है। वह एक क्षत्रिय नारी है। भावुकता पर ममता की विजय कितना कठिन निर्णय रहा होगा।

राजपूतनी की भावुकता जीत चुकी थी
स्वर को ऊंचा किया और दृढ़ होकर बोली....

ये बोल उसे कितने महंगे पड़े होंगे। वह सारा जीवन एकाकी भार को ढोती है। एक विधवा, उपेक्षित, प्रताड़ित, वेदना की मूर्ति की भांति। विषाद में कर्तव्य के पिंजड़े में जकड़ी किसी आहत शेरनी की :

एकाकी जीवन कैसे काटा जाता है
जीवन भर इसका अभ्यास मुझे करना है
क्योंकि समझने वाले मुझको मात्र एक ही
विश्वामित्र महर्षि रह गए।

रामायण के नौ चरित्रों यानी महर्षि अगस्त्य, अहंकारी रावण, महर्षि विश्वामित्र, महारानी कैकेयी, महाराजा दशरथ, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, वीतरागी भाई भरत, महिमा मंडिता सीता, स्वामीभक्त हनुमान के स्वकथन की शैली में आत्मचरित की प्रस्तुति कवि की अभिनव कल्पना है जो उसे आदिकवि वाल्मीकि, रामचरित मानस के प्रणेता तुलसी, तमिल रामायण के सृजेता कम्बन तथा रामचरित के अन्य गायकों, रचयिताओं, महाकवियों से पृथक अपनी पहचान बनाती है। एक ऐसी पहचान, जिससे शम्बर के स्वर्णिम युग को स्मरण कर रावण संस्कृति के सारांश ढूंढते अगस्त्य ऋषि विश्वामित्र को आशामयी दृष्टि से निहार रहे हैं। विश्वामित्र कूटनीति से कैकेयी को कलंकित करते हैं। रावण के चरित्र को नया मोड़ देते समय 'देवों का पिछलग्गू होना मानव छोड़े/अग्निकुंड की आग बुझा दें' जैसे क्रांतिकारी भाव जन्मते हैं। एक नई रामायण लिखती है यह लेखनी। एक नई व्याख्या देती है रामचरित को। दशरथ, सीता, भरत, हनुमान के चरित्र को। नवद्वीप के सभी नायक-नायिकाओं को। राम काव्य की श्रृंखला में विरचित नूतन कल्पना से इस महाकवि को मेरा नमन। □

डा. श्याम सिंह 'शशि'
बी-4/245, सफदरजंग एनक्लेव,
नई दिल्ली-110029

प्रतीकों की शोभा-यात्रा

भारतीय प्रतीक हमारी सांस्कृतिक विरासत के आद्य, अंतरंग एवं अनिवार्य स्रोत एवं सेतु रहे हैं। इनके अध्ययन द्वारा देश के किसी भी काल की सांस्कृतिक पहचान, भाव या विचार-यात्रा तथा उसकी निरवधिक यात्रा को लक्ष्य किया जा सकता है। भारतीय इतिहास के जीवंत, सम्यक् और सांगोपांग अध्ययन में इन प्रतीकों का विशेष महत्व रहा है क्योंकि भारतीय प्रतीकों को उस रूप में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता जिस रूप में अन्यान्य पाश्चात्य देशों के इतिहास और मिथकीय संदर्भों को प्रस्तुत किया जाता रहा है और जिस तरह से बाहर के इतिहासकार भारतीय विद्या या सांस्कृतिक इतिहास को प्रस्तुत करते रहे हैं। सांस्कृतिक इतिहास ही हमारा सबसे बड़ा संबल है जो हमारी भावात्मक एकता को जोड़े रख सकता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक का और ऐसे प्रयासों का भरपूर स्वागत होना चाहिए, जिसमें हमारी सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक चिह्नों को—उनके स्रोतों, मूल प्रेरणाओं, उद्देश्यों और अनुरोधों के साथ पाठकों को उपलब्ध कराया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक साधना का एक अनिवार्य सोपान धर्म और आनुषंगिक आचारांग रहे हैं। इसलिए उन धार्मिक प्रतीकों का हमारे जीवन में विशेष महत्व रहा है जो विभिन्न अवस्थानों, पीठों (देव, देवता, इष्ट) धर्म-मंगल चिन्हों, अनुष्ठानों तथा धार्मिक उत्सवों में अपनी विशिष्ट और कालजयी उपस्थिति बनाए हुए हैं। ये हमारे धार्मिक विश्वास के साथ-साथ उन मिथकीय गाथाओं और पौराणिक कथाओं के भी आलम्बन हैं जो विभिन्न कलाओं के मूल प्रत्यय बनकर उभरे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने चौबीस प्रमुख भारतीय प्रतीकों (सरस्वती से लेकर चन्द्रमा तक) पर संक्षेप में विचार किया है। सरस्वती की प्रतीक पूजा (सरस्वती का विग्रह होता है कोई मंदिर नहीं होता) का हवाला विभिन्न स्रोतों एवं ग्रंथों से देते हुए भी, "या कुन्देन्दु तुषार हार धवला..." का महत्वपूर्ण संदर्भ छोड़ दिया है, जो चित्र या प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से भी एक विशिष्ट प्रस्थान रहा है। अन्यान्य देवी-देवताओं तथा उनके परिकर (लक्ष्मी, काली, शिव-पार्वती, राम-सीता, कृष्ण-राधा, हनुमान, गरूड़, नृसिंह) सूर्य-चन्द्र तथा अन्य प्रतीक (नाग, हाथी, गाय, हंस, अश्वत्थ कमल, वट, त्रिशूल, कलश, स्वस्तिक और ओम्) बृहत्तर भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य में न केवल प्रचलित हैं बल्कि इनसे जुड़ी हुई पौराणिक एवं मिथक गाथाएं लोककंठ में विद्यमान हैं। लेखक ने इन प्रतीकों पर विचार करते हुए ऋग्वेद, महाभारत, श्रीमद्भागवत, बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भारवि, भास तथा बाणभट्ट की रचनाओं, काव्यप्रकाश तथा कतिपय तंत्र शास्त्रों का हवाला दिया है।

पुस्तक अपनी प्रस्तुति में साफ-सुथरी है। प्रतीक के हवालों को चित्रों या अभिप्रायों में किस तरह अंकित किया गया है, उसे छायाचित्रों के माध्यम से भी प्रस्तुत किया गया होता तो वह अधिक उपयोगी होता। □

भारतीय जन जीवन में सांस्कृतिक प्रतीक: डा. भक्तराम शर्मा, सारस्वत प्रकाशन, 13/236, गीता कालोनी, दिल्ली-110031, प्रथम संस्करण 1989; पृ. सं. 112; मूल्य: बीस रुपये।

डा. रणजीत साहा
साहित्य अकादेमी,
रवीन्द्र भवन,
नई दिल्ली-110001

रंगी हुई चिड़िया

रंगी हुई चिड़िया (उपन्यास); लेखक : धर्मेन्द्र गुप्त; प्रकाशक : आत्माराम एंड संस, दिल्ली; पृष्ठ संख्या : 169;, मूल्य : 70 रुपये।

रंगी हुई चिड़िया धर्मेन्द्र गुप्त का चौथा उपन्यास है। उनका कथा-शिल्प एक 'सहज सजीवता' का परिचय देता है जो यथार्थ के द्वन्द्वात्मक रूप को, उसके परत-दर-परत को इस प्रकार खोलता चलता है कि पाठक कथा-प्रवाह के रेखीय एवं वक्रीय दोनों रूपों को एक साथ हृदयंगम करता चलता है। 'रंगी हुई चिड़िया' में काल के ये दोनों रूप एक साथ चलते हैं जो उपन्यास की घटनाओं के द्वारा व्यक्त होते हैं क्योंकि घटना और पात्र की द्वन्द्वात्मक गतिशीलता ही काल की प्रतीति कराती है। अलका जो मध्य वर्ग से आई हुई एक ऐसी नारी है जो आत्ममुग्धता के भ्रम की शिकार होते हुए भी, जीवन-स्थितियों से लगातार संघर्ष करती है और यह संघर्ष तीन नगरों को क्रम से समेटता हुआ एक रेखीय गति का परिचय देता है—ये नगर हैं—इलाहाबाद, दिल्ली और बम्बई। लेखक ने इन तीन नगरों के घटनाक्रम में अलका के चरित्र को उभारा है और प्रत्येक नगर की घटना वक्रीय होते हुए भी रेखीय गति को बाधा नहीं देती है, वरन् उसकी गति को बढ़ाती है। इसी से मैं इस उपन्यास को मूलतः सरल एवं सहज रेखीय गति का ही मानता हूं। इस दृष्टि से धर्मेन्द्र की औपन्यासिक संरचना में काल और घटनाओं का सम्बंध दो प्रकार का प्राप्त होता है—एक घटनाओं को द्वन्द्वात्मकता के सहारे आगे बढ़ाता है और दूसरा स्मृति के रूप में अतीत के गर्भ में समाविष्ट करता जाता है। इस प्रकार स्मृति और वर्तमान का एक द्वन्द्वात्मक सम्बंध उपन्यास की संरचना को काल के भिन्न खण्डों से सम्बंधित करते हुए 'तीसरे नगर' में अलका के फिल्म जगत के प्रति मोहभंग के बाद, वह शबनम के साथ विदेश जाने को तैयार होती है। यहां पर संभावना या भविष्यत् की ओर संकेत है कि आज का भारतीय व्यक्ति अपनी अस्मिता को सुरक्षित न रख सकने के कारण, देश से पलायन कर विदेश की शरण ले लेता है। इसका जिम्मेदार कौन है—उपन्यास इस तथ्य को परोक्ष रूप से ही व्यक्त करता है कि देश की सामाजिक-आर्थिक संरचना ही इसकी जिम्मेदार है।

उपर्युक्त संरचना में एक अन्य तत्व है—वैचारिकता का तत्व। उपन्यास की संरचना में वैचारिकता हावी नहीं हो पाई है वरन् वह वस्तु संयोजन से एकाकार हो गई है। घटना-क्रम प्रधान है और वैचारिकता इसमें अन्तर्भूत है। यही कारण है कि उपन्यास 'तरल' वैचारिकता को साकार करता है। इस उपन्यास की सफलता यह भी है कि यह आम पाठक को भी आकर्षित करेगा और प्रबुद्ध पाठक को भी। □

वीरेन्द्र सिंह

5 ब्र 15, जवाहर नगर,
जयपुर-302004

एक समाजशास्त्रीय शोध अध्ययन : दलितों में दलित

दलितों में दलित; लेखक : हरकिशन संतोषी; प्रकाशक : नव साहित्य अकादमी, ब्लाक-23/2 सी, सैक्टर-2, गोल मार्केट, नई दिल्ली; मूल्य : 50 रुपये।

'दलितों में दलित' हरकिशन संतोषी की एक शोधपूर्ण पुस्तक है जिसमें सदियों से उत्पीड़ित, शोषित, उपेक्षित बाल्मीकि समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह एक ऐसा विषय है जिस पर हिन्दी में या अन्य भारतीय भाषाओं में अधिक नहीं लिखा गया है। संतोषी जी ने इस महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करके अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता सिद्ध की है।

पुस्तक की भूमिका से संतोषी जी ने बाल्मीकि समाज के पिछड़ेपन के कारणों को तलाशना चाहा है। लेखक का मानना है कि शिक्षा किसी भी समाज की प्रगति का केन्द्र बिन्दु है। उसने बाल्मीकि समाज में शिक्षा का स्तर जानने के लिए सर्वेक्षण किया और जो आंकड़े प्रस्तुत किए, वे यह सिद्ध करते हैं कि इस समाज में शिक्षा का प्रसार निम्न स्तर पर हुआ है। जिसके कारण, यह समाज प्रगति धारा से जुड़ ही नहीं पाया।

एक प्रश्न बाल्मीकि, आदि कवि को लेकर भी उन्होंने उठाया है। आदि कवि बाल्मीकि ने 'रामायण' की रचना की। जो भारतीय वांग्मय की अप्रतिम कृति है। जो आज भी भारतीय जनमानस की रीढ़ बनी हुई है। उनके द्वारा प्रस्थापित आदर्श आज भी हिन्दू समाज को शक्ति दे रहे हैं। जाति भेद, वर्ण व्यवस्था, सामंती मूल्य लोकतांत्रिक मूल्यों को नकारते हैं, जबकि ये सब हिन्दू धर्म, हिन्दू समाज के मूलभूत अंग हैं। इन सबका अभिशप्त रूप बाल्मीकि समाज को सहना पड़ा है। जाति भेद की भयावह त्रासदी अछूत जातियों में भी बहुत गहरे तक विद्यमान है। बाल्मीकि समाज सबसे निचली सीढ़ी पर खड़ा है।

यह पुस्तक मात्र तथ्यों, आंकड़ों का ही दस्तावेज नहीं है। लेखक की सामाजिक दृष्टि एवं प्रतिबद्धता का भी प्रतिपादन हुआ है। साथ ही हुई है एक शुरुआत जो संभवतः शोधकर्ताओं को आकृष्ट करेगी। □

ओमप्रकाश खैरवाल
4 न्यू रोड स्ट्रीट, कलालों वाली गली,
देहरादून-248001 (उ. प्र.)

ऐतिहासिक प्रसंगों का रोचक आख्यान

'पूर्णाहुति', लेखिका: मृदुला बिहारी, प्रकाशक: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ संख्या: 152, मूल्य: पचास रुपये

ऐतिहासिक प्रसंगों को आधार बनाकर साहित्यिक कृति रचने का सबसे बड़ा खतरा यह है कि उसमें इतिहास और साहित्य के बीच संतुलन बनाना तलवार की धार पर चलने जैसा होता है। तनिक भी असंतुलन कृति का बंटाढार कर सकता है। सफल रचनाकार दोनों पक्षों में सामंजस्य बैठाता है।

'पूर्णाहुति' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। इसकी घटनाएं, पात्र, देश-काल, परिस्थितियां—सभी इतिहास से संबंधित हैं। लेखिका मृदुला बिहारी ने ऐतिहासिक घटनाओं को सुन्दर, प्रभावशाली, सरस और कौतूहलवर्धक बनाने का सफल प्रयास किया है। इसकी कथा का केन्द्र बिन्दु चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी है। सम्पूर्ण कथा पद्मिनी के इर्द-गिर्द घूमती है। उपन्यास के पात्रों में चित्तौड़ के महाराजा रत्नसिंह एक संकल्पी और विवेकशील व्यक्तित्व के धनी हैं। रानी पद्मिनी अनिंद्य सुन्दरी हैं। दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन खिलजी अत्याचारी और अय्याश है। गोरा एवं बादल त्याग और बलिदान के स्तम्भ हैं। 'घर का भेदी लंका ढाए' का कार्य विश्वासघाती राघवचेतन ने किया है।

ऐतिहासिक उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण विषय होता है—उसके देशकाल का चित्रण अथवा वातावरण का निर्माण। प्रस्तुत उपन्यास की आधारभूमि चित्तौड़ है। प्रायः अधिकतर घटनाएं चित्तौड़ में ही घटी हैं। वैसे भी चित्तौड़ प्रसिद्ध सूरमाओं की ऐतिहासिक कार्यस्थली रहा है। लेखिका ने उस काल का जीता-जागता चित्र पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। शासकों के आपसी तनाव प्रायः किसी न किसी बात को लेकर चलते ही रहते थे। इस उपन्यास में पद्मिनी के अप्रतिम सौंदर्य की ख्याति युद्ध का कारण बनी, जो पद्मिनी की जीवन समाप्ति पर ही समाप्त हुआ।

कथोपकथन उपन्यास का ऐसा तत्व है जिसके माध्यम से पाठक पात्रों के संपर्क में आता है। 'पूर्णाहुति' उपन्यास के कथोपकथन सजीवता और वास्तविकता से परिपूर्ण है। उपन्यास का संवाद पाठक की रुचि को बनाए रहते हैं। परिस्थितियों के अनुसार उनकी अभिव्यक्ति में कहीं आवेश है तो कहीं स्थिरता। संवाद कहीं संक्षिप्त है तो कहीं विस्तृत। किसी-किसी प्रसंग में तो वार्तालाप अत्यंत हृदयग्राही है। कथा में प्रवाह है।

उपन्यास की भाषा शुद्ध, प्रांजल होने के साथ-साथ सरस और सहज है। वर्णन इतने सजीव हैं कि पाठक पूर्णरूप से उपन्यास में रम जाता है। वर्णन शैली अत्यंत परिष्कृत है। आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए महान त्याग और बलिदान की भावना को यह कृति अभिव्यक्ति देती है। इसी को लेखिका दिखाना चाहती है कि पद्मिनी में आत्मसम्मान की भावना कितनी प्रबल थी जिसके लिए उसने अनेक साहसी कदम उठाए और अन्त में जौहर करके उसने अपने असीम साहस का परिचय दिया। उसके जौहर ने भारतीय नारियों को ससम्मान जीना सिखाया और संदेश दिया कि पराधीनता में रहने से स्वतंत्रता के लिए मरना कहीं बेहतर है। लेखिका ने दर्शाया है कि पद्मिनी ने कठिन संघर्षों की आग में जलते हुए अपने धर्म, जाति और देश के सम्मान के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। लेखिका का यह प्रयोग सफल होने के साथ-साथ श्लाघ्य भी है।

श्रीमती शकुन्तला शर्मा,
21, राजपुर रोड, दिल्ली-110094

बदला चुका दिया

बदला चुका दिया; लेखक: ज्ञानाचार्य आनन्दी प्रसाद माथुर; प्रकाशक: अभिव्यक्ति प्रकाशन, 29/61, गली नं. 11, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032; पृष्ठ: 128; मूल्य: 32 रुपये।

वयोवृद्ध साहित्यकार, स्वतंत्रता सेनानी और गांधी जी के निकट रहने वाले ज्ञानाचार्य आनन्दी प्रसाद माथुर द्वारा लिखित 'बदला चुका दिया' नामक कहानी संकलन में कुल 28 कहानियां संग्रहित हैं। ये कहानियां बोल-चाल की टकसाली भाषा में हैं और दैनिक जीवन की आम घटनाओं पर आधारित हैं। क्योंकि माथुर जी गांधी जी के निकट रहे स्वतंत्रता सेनानी और समाजसेवी कार्यकर्ता हैं, इसलिए उनकी कहानियों में गांधी-दर्शन की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। कुछ कहानियां बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से काफी सुन्दर बन पड़ी हैं।

इन कहानियों में माथुर जी के अपने लम्बे जीवन का अनुभव भी झलकता है। ये कहानियां रोचक, आदर्शोन्मुखी एवं उद्देश्यपरक हैं, जो सर्वोदयी समाज निर्माण का सुखद विकल्प प्रस्तुत करती हैं। कहानियों का लक्ष्य नई पीढ़ी में देशभक्ति, समाज सेवा, भाईचारा, त्याग और बलिदान की भावना अंकुरित करना है। यही कारण है कि माथुर जी की इन कहानियों की प्रशंसा हिन्दी-जगत के प्रख्यात लेखक श्री इन्द्रनारायण गुर्टू, चन्द्र प्रकाश सक्सेना, चक्रधारी अग्रवाल और चन्द्रभान शर्मा ने भी उन्मुक्त मन से की थी। इन कहानियों से युवा मानस में अपने उद्देश्य के प्रति समर्पण की भावना, प्रौढ़ों में नई चेतना और बालकों में भी कुछ करने की चाह अवश्य पैदा होगी।

सारांशतः कहा जा सकता है कि राष्ट्रीयता की स्वर्णिम आधारशिला पर आधृत इन कहानियों में राष्ट्रीय अस्मिता का स्वर मुखरित हुआ है। इन शिक्षाप्रद कहानियों ने नई पीढ़ी के लिए एक बहुत बड़ी कमी को पूरा कर दिया है। हिन्दी-जगत में इन कहानियों का स्वागत होना चाहिए। □

डा. इन्द्र सेंगर
30/106, पंचशील गली नं.- 7
विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-32

प्राप्ति स्वीकार

बोल जमूरे (काव्य नाटक): कवि: रमेश नीलकमल: प्रकाशक: संजय प्रकाशन, रामपुर डुमरा, पटना: पृष्ठ संख्या: 72: मूल्य: 20 रुपये।

अंधविश्वासों से संघर्ष: लेखक: आनंद प्रकाश राजवंशी: प्रकाशक: वाणी विहार पब्लिकेशन, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-49: पृष्ठ: 120: मूल्य: 10 रुपये।

राष्ट्रीय चेतना के कवि मैथिलीशरण गुप्त: सम्पादक: डा. अर्जुन शतपथी तथा श्री मधुसूदन शाह: प्रकाशक: पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वास नगर, दिल्ली: पृष्ठ संख्या: 144: मूल्य: 45 रुपये।

फुटपाथ पर चिड़िया नाचती हैं: कवि: भगवती लाल व्यास: प्रकाशक: संधी प्रकाशन, जयपुर: पृष्ठ संख्या: 78: मूल्य: 25 रुपये।

नाखून उखड़ने की रात: कवि: हरि प्रकाश त्यागी: प्रकाशक: प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली: पृष्ठ संख्या: 88: मूल्य: 30 रुपये।

(पृष्ठ 25 का शेष)

वास्तविकताओं को दर-किनार कर समय के प्रवाह को झुठला देना चाहता है। माधवी को पाने के लिए वह सब कुछ दांव पर लगाने के लिए तैयार है, नौकरी, बीबी, बच्चों को और जाने किस-किस को।

माधवी और रोहित उपन्यास के अन्त में अन्तिम बार मिलते हैं। यह मिलन अत्यंत मार्मिक है। द्वंद्वात्मक औपन्यासिकता विकराल वास्तविकताओं की व्यथा के साथ उद्वेलित और सजीव हो उठती है। रोहित माधवी के नजदीक आने के लिए शारीरिक चेष्टाएं करता है। माधवी एक सीमा तक प्रतिरोध नहीं करती फिर सहसा एक झटके के साथ उसे रोक देती है—"शरीर की जरूरतों को पूरा करना ही धर्म हो तो फिर तुम्हीं क्यों?"

माधवी का यह वाक्य व्यंजनात्मक है तथा वास्तविक स्थितियों को नजरअंदाज करने की रोहित की मानसिकता को बिजली का झटका देता है। स्थितियों और वास्तविकताओं के सही अहसास के लिए ऐसे झटके जरूरी होते हैं।

रोहित और माधवी के बीच एक हाथ भर का फासला नहीं है कि जब चाहो उस फासले को लांघ कर एक-दूसरे से चिपट जाओ। उनके बीच रमाकांत की संयत लेखनी है, एक ब्रह्मांडव्यापी परिवेश है, एक भरा-पूरा संसार है जो जिंदगी की बदलती हुई धारणाओं, मूल्यों, परिप्रेक्षयों और संदर्भों से अछूता नहीं है। रोहित और माधवी के बीच एक खाई है, एक जीती जागती दुनिया है-तीसरी दुनिया, उसके दु:ख-दर्द, दुधर्ष संघर्ष, सामाजिक अन्तर्विरोध है जो मुंह बाए खड़े हैं; एक युद्ध है जो नए और पुराने के बीच हर घड़ी, हर पल चल रहा है और इन सबके साथ लामबन्द होती लहूलुहान जनता का वह अग्रिणदस्ता है जिसका कि पक्षधर 'नन्हे' है, जो माधवी का छोटा भाई है। इन सबको दरकिनार कर रोहित की 'गुदास प्रेमिका' बन पाना माधवी के लिए उतना सहज-सम्भाव्य नहीं है जितना कि (कम जागरुक व जीवन की सचाई से आंख मूंद कर प्रेमकथा लिखने वाले) किसी भी आत्ममुग्ध कथाकार की नायिका के लिए वह हो सकता था। लेकिन रमाकांत एक अत्यधिक जागरुक लेखक थे। कलात्मक संयम, संजीदगी और मौन करुणा उनके कथाकार की स्वाभाविक विशेषताएं थीं। अनायास और निजी ढंग के वे एक सहज, सर्जनात्मक और जागरुक कलाकार थे। □

4/385, रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली-110022

(पृष्ठ 34 का शेष)

नाम से पुकारे जाते हैं। इस प्रकार जो नाम होते हैं वे वास्तविक नाम के अर्थ से कुछ संबंध नहीं रखते। इसमें केवल उच्चारण के साम्य का ध्यान रखा जाता है। अर्थ लगाने से तो अनर्थ हो जाएगा। जैसे गांधी जी के चीनी नाम कान ति का अर्थ होगा चीनी भाषा में 'मीठी जमीन'।

ऊपर कहा गया है कि चीनी भाषा के बड़े कोष में पचास हजार संकेत-शब्दों की चर्चा है। ये पचास हजार शब्द दो सौ चौदह रेडिकलों (Radicals) में विभक्त हैं। कोष का निर्माण इन रेडिकलों की सहायता से ही होता है। वर्णमाला वाली भाषा में जिस प्रकार वर्णमाला के अक्षरों के क्रम से कोष बनता है उसी प्रकार चीनी भाषा का कोप रेडिकलों के क्रम से बनता है। इन दो सौ चौदह रेडिकलों का क्रम दो तीन करके है। कोष में शब्द निकालने के लिए देखना पड़ता है कि अमुक शब्द जो हम निकालना चाहते हैं वह किस रेडिकल का है। मान लीजिए कि वह 212वें रेडिकल का हुआ। तब कोष में 212वें रेडिकल का जो अध्याय है उसमें अमुक शब्द खोजने से निकल आएगा। कोष के प्रारंभ में रेडिकल की सूची दी रहती है। कोष बनाने की अब और भी कई आधुनिक पद्धतियां निकली हैं। चीनी भाषा सीखने के इच्छुक व्यक्ति पचास हजार शब्दों का नाम सुनकर ही आतंकित हो जाते हैं। पर बात यह है कि इनमें 80-85 प्रतिशत शब्द तो केवल कोष की शोभा ही हैं। उनका व्यवहार तो विरले ही होता है। प्रतिदिन का काम एक हजार शब्दों से चल जाता है। कालेजों से निकले हुए स्नातक तीन-चार हजार अक्षरों (शब्दों) से अधिक नहीं जानते और दस हजार जानने वाले तो अंगुली पर गिने जा सकते हैं।

औसतन दैनिक और मासिक पत्रों के छापेखाने में 7/8 हजार शब्दों के टाइप रहते हैं। बाइबिल का अनुवाद दो हजार विभिन्न अक्षरों से ही हो गया है। चीन के प्राचीन ग्रंथों में लगभग पांच हजार विभिन्न अक्षर ही व्यवहृत हुए हैं। आजकल के समय में चार हजार विभिन्न अक्षरों को जान लेना ही काफी है।

चीन में और भी दो कुलों की भाषाएं बोली जाती हैं पर उनके बोलने वालों की संख्या नगण्य है। चीन जैसे विशाल देश में एक ही भाषा का व्यवहार होना कम आश्चर्य की बात नहीं है। इस एक भाषा ने चीन को संगठित होने में बड़ी मदद पहुंचाई है। भाषा के क्षेत्र में चीन भारत के लिए बड़ा ही अच्छा उदाहरण है। □



अरुण कमल को श्रीकांत वर्मा पुरस्कार

नई दिल्ली : इस वर्ष पांचवां श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार हिन्दी के युवा कवि श्री अरुण कमल को उनके काव्य संग्रह 'सबूत' के लिए दिया गया।

त्रिवेणी सभागार में आयोजित समारोह में केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुन सिंह ने श्री अरुण कमल को पुरस्कार स्वरूप पांच हजार रुपये का चेक और एक प्रतीक चिन्ह भेंट किया।

समारोह में अतिथियों का स्वागत करते हुए पुरस्कार की संस्थापिका एवं सांसद श्रीमती वीणा वर्मा ने कहा कि इस पुरस्कार का मुख्य उद्देश्य समकालीन साहित्य के क्षेत्र में युवा सर्जनशील साहित्यकारों को प्रोत्साहित करना है।

इस अवसर पर प्रसिद्ध आलोचक डा. नामवर सिंह ने अपने विचार प्रकट करते हुए अरुण कमल को मनुष्य की संभावनाओं का कवि बताया। उन्होंने कहा कि हिन्दी में जो थोड़े बहुत पुरस्कार ग्रहण करने योग्य रह गए हैं यह उनमें से एक है। कवि श्री केदारनाथ सिंह ने कहा कि यद्यपि अरुण कमल छोटी-छोटी कविताएं लिखने वाले कवि हैं लेकिन उनका चिंतन व्यापक है। इन कविताओं में समाज की सच्चाई और मनुष्य की गाथा गुंफित है।

कवि आलोचक अशोक वाजपेयी ने श्रीकांत वर्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि श्रीकांत में अद्भुत पारदर्शिता, निरंतर बेचैनी और अधीर शिल्प था।

पुरस्कार ग्रहण करने के बाद श्री अरुण कमल ने कहा कि यद्यपि पुरस्कार साहित्यकारों के जीवन में महत्व नहीं रखते परन्तु जब उनके पांव लड़खड़ाने लगते हैं तब इनसे उसे सहारा अवश्य मिलता है और यह उसके लेखन की कसौटी बन कर उसे प्रेरणा देता है आगे बढ़ने के लिए। □

डा. उषा गोपाल,

आई-10, प्रसाद नगर,
नई दिल्ली-110055

श्रीडूंगरगढ़ में हिन्दी दिवस समारोह

श्रीडूंगरगढ़ में साहित्य, कला और संस्कृति संस्था राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति द्वारा गत 14 सितम्बर को हिन्दी समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर 'हिन्दी और भारतीय भाषाओं के अंतर्सम्बंध' विषय पर संगोष्ठी में डॉ. उमाकांत गुप्त ने हिन्दी की समृद्धि के लिए प्रांतीय भाषाओं से उसके उदार सम्पर्क बने रहने को आवश्यक बताया। जागती जोत के संपादक चेतन स्वामी ने हिन्दी के माध्यम से राष्ट्रीय सोच की दिशा में एकात्मकता स्थापित करने की बात कही। विशिष्ट वक्ता डॉ. बाबू लाल शर्मा ने हिन्दी के विकास में अनेक प्रांतों के पुरोधाओं का जिक्र करते हुए कहा कि आज हिन्दी के प्रतिष्ठापन में प्रांतीय भाषाओं की जगह अंग्रेजी की अवहेलना की जानी चाहिए। डॉ. शर्मा ने यह भी कहा कि हमें उदारतापूर्वक अन्यान्य प्रांतों की भाषाओं को सीखना चाहिए।

संस्था की ओर से हिन्दी-सेवी मनीषी साहित्यकार डॉ. मनोहर शर्मा तथा हिन्दी के प्रचारक डॉ. मित्रेश कुमार गुप्त को अपने सर्वोच्च सम्मान 'साहित्य श्री' से अलंकृत किया गया। समारोह



की अध्यक्षता श्री केशव श्रीमाली ने की और इसके मुख्य अतिथि कस्बे के प्रमुख समाजसेवी श्री धर्मचंद पुगलिया थे।

रात्रि में बीकानेर की नाट्य संस्था 'संकल्प' के कलाकारों ने 'भूमिका' नाटक का मंचन किया तथा इससे पूर्व कस्बे के कुछ चौराहों पर नुक्कड़ नाटकों की प्रस्तुतियां भी दीं। दूसरे दिन दोपहर में पुस्तकालय सभागार में प्रसिद्ध शायर शीन. काफ. निजाम ने अपनी ग़ज़लें प्रस्तुत कीं। □

श्याम महर्षि
राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति
श्रीडूंगरगढ़, (राजस्थान)



राधाकृष्ण पुरस्कार समारोह

रांची, हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार एवं चिंतक प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद ने गत 8 सितम्बर को संत साहित्य के मर्मज्ञ और प्रसिद्ध समीक्षक डा. राम खेलावन पाण्डेय को मरणोपरांत दशम राधाकृष्ण पुरस्कार से सम्मानित किया। यह पुरस्कार समारोह सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार और साहित्यकार राधाकृष्ण की स्मृति में दैनिक 'रांची एक्सप्रेस' प्रतिवर्ष आयोजित करता है। छोटा नागपुर और संथाल परगना के किसी हिन्दी साहित्यकार को उसकी कृति या हिन्दी साहित्य की सेवा के लिए इस पुरस्कार से प्रतिवर्ष सम्मानित किया जाता है। वर्ष 1989 का पुरस्कार इस वर्ष डा. रामखेलावन पाण्डेय को दिया गया। उनके ज्येष्ठ पुत्र अशोक कुमार 'अशोक' ने अपने पिता की ओर से पुरस्कार के रूप में 5101 रुपये नकद और प्रशस्ति पत्र ग्रहण किया।

रांची विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा. अयोध्या प्रसाद ने समारोह की अध्यक्षता की। 'रांची एक्सप्रेस' के संपादक पवन मारू ने आगन्तुकों का स्वागत किया। □

उमाकांत छेत्री
द्वारा दीपक स्टूडियो
अपर बाजार, बड़ालाल स्ट्रीट
रांची-834001



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हिन्दी सप्ताह

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में गत 14 से 20 सितम्बर तक हिन्दी सप्ताह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर 20 सितम्बर को समारोह की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के उपकुलपति प्रोफेसर एम. एन. फारुकी ने की। हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. के. पी. सिंह ने कहा कि भाषा और साहित्य का अध्ययन ही हमें उच्चतर और मानवीय जीवन मूल्यों से जोड़ता है। आज की इस उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के प्रति बढ़ते आग्रह को देखते हुए भाषा और साहित्य के अध्ययन की और अधिक जरूरत है।

मुख्य अतिथि डा. श्याम सिंह शशि ने हिन्दी की स्थिति का व्यापक परिचय दिया और बताया कि हिन्दी को अपने अंदर एक आकर्षण पैदा करना होगा जिससे उसकी ग्रहणशीलता बढ़े। उन्होंने कहा कि हिन्दी-भाषियों को दक्षिण भारत की एक अन्य भाषा सीखनी चाहिए, क्योंकि अन्य भाषा-भाषियों के निकट आने के लिए यह बहुत आवश्यक है। अंग्रेजी का विरोध करने और उसे हटाने के लिए आंदोलन करके हमें हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए काम करना चाहिए। निज भाषा की उन्नति के बिना, देश की उन्नति संभव नहीं।

विश्वविद्यालय के उपकुलपति एवं समारोह के अध्यक्ष प्रो. फारुकी ने हिन्दी सप्ताह समारोह का समापन करते हुए कहा कि हमें भाषा और साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहन देना चाहिए। आज राष्ट्रीय एकता की बड़ी आवश्यकता है उसे हिन्दी ही पूरा कर सकती है। उन्होंने आग्रह किया कि हिन्दी का ऐसा स्वरूप हो जो व्यापक जनसमूह के लिए ग्राह्य हो। कठिन हिन्दी कभी भी व्यापक जनसमूह द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती। अतः हमें ऐसी भाषा का विकास करना होगा जिसे कस्बे और गांव का आदमी भी समझ सके।

सभा का संचालन करते हुए प्रो. शैलेश जैदी ने श्रोताओं के समक्ष इस 'हिन्दी-सप्ताह' में लिए गए निष्कर्षों और संकल्पों को प्रस्तुत किया। उन्होंने उपस्थित श्रोताओं को आश्वस्त किया कि हमारा प्रयास हिन्दी को सरल और सहज बनाने का ही होगा। हिन्दी एक जनभाषा बने, यह हमारा प्रयास होगा। हिन्दी को सांस्कृतिक समन्वय की भाषा के रूप में विकसित करके उसे हम वह स्तर देना चाहते हैं, ताकि हिन्दी देश को जोड़ने की भाषा बने, वह सेतु का काम करे। □

कुंवर पाल सिंह
हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़-2



आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन का सम्मान

सुप्रसिद्ध हिन्दी सेवी आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन के जन्म दिन पर गत 30 सितम्बर को हिमाचल भवन, नई दिल्ली में अमृत-महोत्सव समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर उपस्थित विद्वानों और पत्रकारों ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए सुमन जी द्वारा की गई सेवाओं की चर्चा करते हुए उनके दीर्घायु होने की कामना की। समारोह में भूतपूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह भी उपस्थित थे। इस मौके पर उन्होंने कवयित्री लीला तलरेजा के सद्यः प्रकाशित काव्य संग्रह 'जमीन पर जमीन की तलाश' का विमोचन किया। □

नशाखोरी विरोध दिवस

खगौल (पटना) की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था '[illegible]' के तत्वावधान में महात्मा गांधी जयंती राष्ट्रीय नशीली दवा दुरुपयोग विरोध दिवस के रूप में मनाया गया। इस अवसर पर दानापुर रेल अस्पताल के मुख्य चिकित्सा अधीक्षक डा. एस. पी. सिन्हा की अध्यक्षता में विचार गोष्ठी का भी आयोजन किया गया।



मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए मंडल चिकित्सा अधिकारी डा. एल.पी. गुप्ता ने नशीली दवाओं पर प्रकाश डाला और इसके दुरुपयोग से होने वाले खतरों से लोगों को सावधान कराया। युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हुए श्री तारक नंदन सहाय ने कहा कि सामाजिक समस्याओं से उत्पन्न मानसिक तनाव ही इस बुराई की जड़ है जिससे छुटकारा पाने के लिए हमें अपनी इच्छा-शक्ति को मजबूत बनाना होगा। मुख्य वक्ता डा. मदन दुबे ने बताया कि नशीली दवाओं के दुरुपयोग से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता समाप्त हो जाती है और मनुष्य का जीवन बर्बाद हो जाता है।

अपने अध्यक्षीय भाषण में डा. सिन्हा ने नशीले पदार्थों के सेवन पर चिंता प्रकट करते हुए समाज के सभी वर्गों से अपील की कि वे नशाखोरी निवारण की दिशा में प्रयास करें।

गोष्ठी का संचालन करते हुए वरिष्ठ रंगकर्मी श्री आर. पी. वर्मा 'तरुण' ने रंगकर्मियों का आह्वान किया कि वे नशाखोरी के विरोध में व्यापक अभियान चलाएं। उन्होंने विशेषकर युवकों से अपील की कि वे अपनी शक्ति को नशे में बर्बाद होने से बचाएं। □

बी. प्रसाद
त्रिदीप, दल्लूचक स्ट्रीट
खगौल (पटना) बिहार-801105

(पृष्ठ 39 का शेष)

हमें अब लगातार सैर करते हुए पैंतालीस रोज हो गए। अब ऐसा लगता है हमें सैर की आदत पड़ गई है। अब ज्योंही मुर्गा बांग देता है, बिस्तर में हमारे पांव हिलने शुरू हो जाते हैं। हम सोचने लगते हैं कि आज कौन से नजारे, किस किस्म के लोग देखने को मिलेंगे। सैर से अगर सेहत न भी हो तो यह जो मुफ्त का तमाशा देखने को मिलता है। यह कुछ कम बात नहीं। गालिब भी सिर्फ 'तमाशाए-अहले-करम' देखने के लिए सुबह सैर को जाते थे। अब हमारे शौक का यह हाल है कि अक्सर सारी-सारी रात नींद नहीं आती और बार-बार हम फैज की तरह पूछते रहते हैं कि "ऐ दिल कब रात बसर होगी।" □

8-2-697/6, रोड नं. 12, बंजारा हिल्स
हैदराबाद-500034



हिन्दी प्रचार अभियान को सशक्त करना है

केरल के मुख्यमंत्री श्री के. करुणाकरन ने आह्वान किया कि जनता को हिन्दी की आवश्यकता और उपयोगिता भली-भांति से समझाने के लिए हिन्दी प्रचार अभियान को सशक्त करना है। लोगों में यह बोध उत्पन्न करना है कि बच्चों को हिन्दी पढ़ने के अवसरों से वंचित रखना उनके प्रति बड़ा अपराध होगा। क्योंकि हिन्दी के बिना भारत में जीवन बिताना ही दुष्कर है।

केरल स्थित केन्द्र सरकार के कार्यालयों, उपक्रमों, निगमों और राष्ट्रीयकृत बैंकों के सहयोग से केरल हिन्दी प्रचार सभा द्वारा आयोजित हिन्दी सप्ताह समारोह के समापन सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए श्री करुणाकरन ने कहा कि हिन्दी भाषी जनता हिन्दीतर भाषा-भाषियों पर हिन्दी लादने का प्रयत्न न करे। हिन्दी की प्रभुता की मनोवृत्ति नहीं होनी चाहिए। हिन्दीवालों को यह बात स्वीकार करनी होगी कि हिन्दी समूचे राष्ट्र की भाषा है।

सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए सांसद श्री ए. चार्ल्स ने कहा कि उत्तर भारत में त्रिभाषा सूत्र के अंतर्गत किसी आधुनिक हिन्दीतर भारतीय भाषा का अध्यापन नहीं होता। उत्तर में केवल दो भाषाएं पढ़ाई जाती हैं—हिन्दी और अंग्रेजी। तमिलनाडु में भी दो ही भाषाएं सिखाई जाती हैं—तमिल और अंग्रेजी। त्रिभाषा सूत्र का प्रभावी क्रियान्वयन भारत भर में करना ही हिन्दी विरोध को दूर करने का एकमात्र उपाय है।

सांसद श्री कोटिक्कुन्निल सुरेश ने कहा कि हिन्दी में इतनी योग्यता अवश्य विकसित करनी चाहिए ताकि छात्र प्रवाह के साथ हिन्दी में बोल सकें, भाषण दे सकें।

केरल विश्वविद्यालय के पूर्व उपकुलपति डा. एन. ए. करीम ने कहा कि भारत की राष्ट्रीय भावना में जो ह्रास हुआ वही हिन्दी या अन्य भाषाओं की दुर्गति का कारण है। अंग्रेजी को शासन का माध्यम बनाए रखना देश के लिए हानिकारक है। क्योंकि जब तक शासन अंग्रेजी में होता रहेगा, अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की संख्या बढ़ती रहेगी और शासन की बागडोर उच्च वर्ग के हाथ में ही रहेगी। भारतीय भाषाओं के विकास के लिए अनुकूल सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति उत्पन्न करना है। □

के. जी. बालकृष्ण पिल्लै,
संपादक, केरल ज्योति,
केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695014

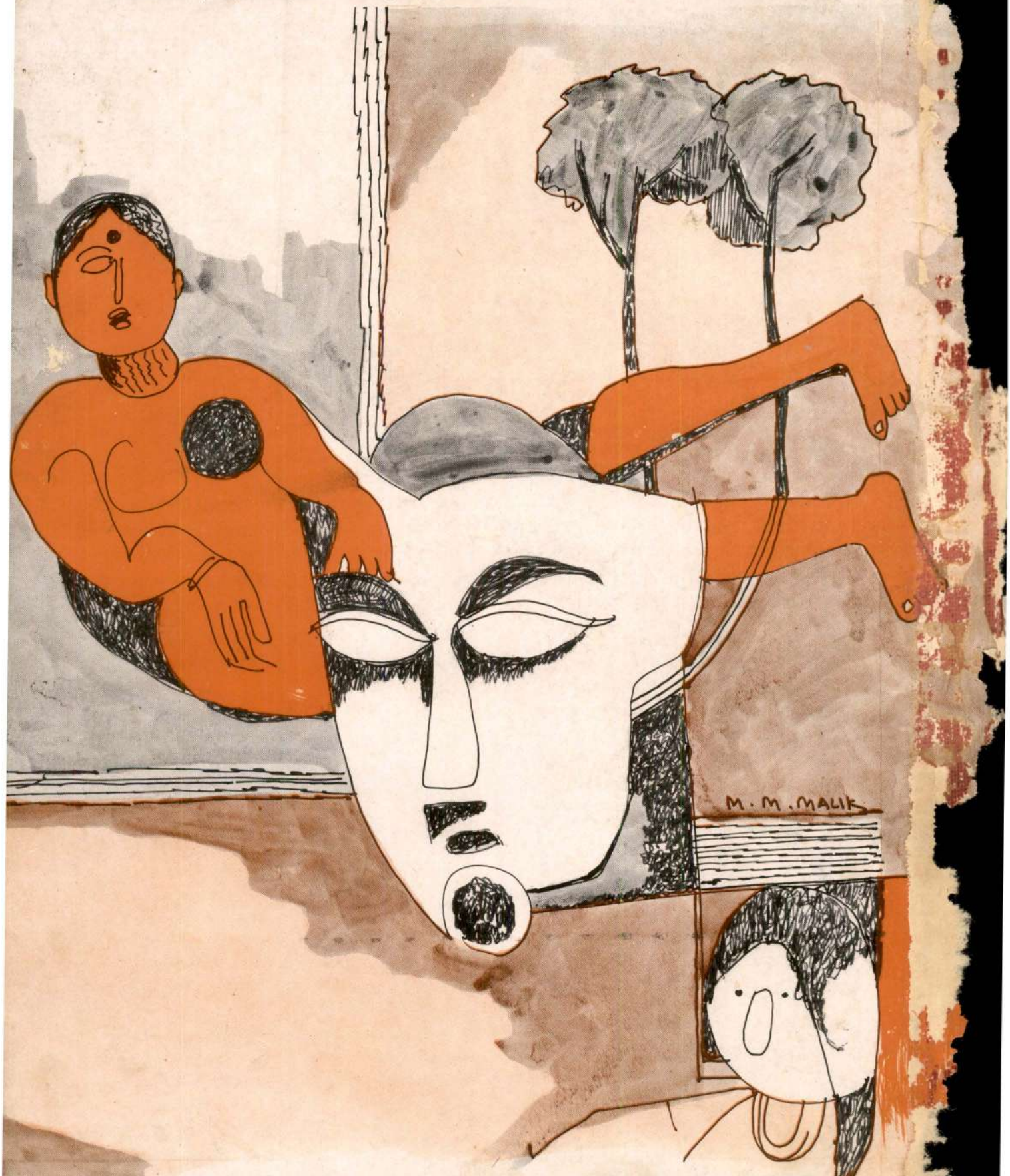


प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव ने पिछले दिनों नई दिल्ली में हिन्दी के जाने-माने गीतकार राजमणि राय 'मणि' के नवीनतम काव्य संकलन 'अपराजेय' का विमोचन किया। इस मौके पर संसद सदस्य श्री चिरंजीत यादव, श्री रामलखन सिंह यादव और अनेक साहित्यकार व विद्वान उपस्थित थे। □

यू (डी. एन.)-49 प्राप्त
P. & T. Regd. No. D (DN)/105
Licenced U (DN)-49 to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

दिल्ली डाक
Delhi Postal

आर. एन. 701/57
R.N. 701/57



डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित